Chapter-4

चतुर्थ अध्याय

चतुर्थ अध्याय

8वें 9वें दशक के उपन्यासों में विभिन्न पारिवारिक समस्याएँ:

- संयुक्त परिवारों का विघटन और एकल परिवार का प्रादुर्भाव
- नौकरी पेशा महिला की स्थिति – परिवार समर्पिता, द्वन्द्वग्रस्त मानसिकता, विद्रोह
- पति–पत्नी के बीच आने वाले तनाव
- बच्चों की समस्या
- तलाक की समस्या
- परम्परागत नैतिक मूल्यों में विघटन
- उन्मुक्त यौन प्रवृत्ति (आधुनिकता का प्रभाव)
- पुरुष की स्थिति, स्थान

परिवार का निर्माण कुछ मूल उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जाता है। परिवार का उद्देश्य यौन सम्बंधों का नियमन करना, सन्तानोत्पत्ति करना, उनका लालन–पालन, शिक्षण व सामाजीकरण करना तथा उन्हें आर्थिक, सामाजिक और मानसिक संरक्षण प्रदान करना है। इन प्रकार्यो की पूर्ति के लिए परिवार के सदस्य परस्पर अधिकारों एवं कर्तव्यों से बंधे होते हैं। परिवार की सांस्कृतिक विशेषता यह है कि परिवार समाज की संस्कृति की रचना, सुरक्षा, हस्तान्तरण में योग देता है। व्यक्ति की शारीरिक एवं मानसिक आवश्यकताओं को लिया जा सकता है। शारीरिक संरचना की दृष्टि से स्त्री–पुरुष दोनों भिन्न हैं और अपने आप में अपूर्ण भी। रतिविषयक कामनाएँ इस अपूर्णता को और अधिक बढ़ाती हैं। दूसरे, अकेलापन व्यक्ति को कुण्ठित करता है। दुख–सुख बाँटने के लिए उसे किसी का चिर–संग वांछित है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सृष्टि के प्रारंभ में स्त्री–पुरुष का संसर्ग हुआ होगा। स्त्री–पुरुष के रति सम्बंध तथा उन सम्बंधों के कारण उत्पन्न संतान – यह क्रम वास्तव में जीवन है और परिवार भी। निश्चय ही परिवार के मूल में यौन–संबंध हैं, किन्तु उन्मुक्त यौन संबंध नहीं। उन्मुक्त यौन–संबंधों को समाज मान्यता नहीं देता। क्योंकि ये संबंध व्यक्ति को अनुत्तरदायी बनाते हैं। दूसरे ऐसी अवस्था में संतान का न कोई संरक्षक होता है, न भविष्य। अतः इसके दुष्परिणामों को देखते हुए विवाह प्रथा का उदय हुआ। विवाह अपने अंदर के अधूरेपन को भरने का तथा आत्मविकास का साधन है। विवाह के आधार पर बने स्त्री–पुरुष संबधों तथा उनकी

संतान को 'परिवार' की संज्ञा दी गई है। यही मूल परिवार है जिसे 'एकल परिवार' भी कहा जाता है। इस मूल परिवार की संतान युवावस्था में विवाह करके जब सन्तानोत्पत्ति करती है, और वहीं रहती है तब परिवार का स्वरूप विस्तृत होता चलता है। इसे 'संयुक्त परिवार' कहते हैं।

1. संयुक्त परिवारों का विघटन और एकल परिवार का प्रादुर्भावः

संयुक्त परिवार प्रणाली भारतीय समाज की प्रमुख विशेषता रही है। आदिकाल से ही यह हिन्दू समाज व्यवस्था की आधारशिला रही है। संयुक्त परिवार जिसमें दादा–दादी, माता–पिता, पुत्र और पौत्र साथ–साथ निवास करते हों, जिनकी सम्पत्ति सामूहिक हो और जो सामूहिक रूप से आर्थिक क्रियाओ में भाग लेते हों तथा पूजा एवं उत्सव का आयोजन सामूहिक रूप से ही करते हों। भारतीय परिवार पितृ–प्रधान है। परिवार में पिता अथवा वयोवृद्ध पुरुष ही परिवार की देख–रेख और नियंत्रण करता है। परिवार के अन्य सदस्य उसकी आज्ञा का पालन करते हैं और अनुशासन में रहते हैं। संयुक्त परिवार के सभी सदस्य परस्पर अधिकारों और दायित्वों में बंधे होते हैं। बड़े छोटों पर अपने अधिकारों का प्रयोग करते हैं तो छोटे बड़ों के प्रति अपने कर्तव्यों का निर्वाह करते हैं। संयुक्त परिवार में प्रत्येक व्यक्ति अपने दायित्व को निभाता है। संयुक्त परिवार अपने सदस्यों पर अनुशासन और नियंत्रण बनाये रखता है। वही सामाजिक परम्पराओं, रुढियों आदि का पालन कराकर संस्कृति की रक्षा भी करता है, और अपने सदस्यों को आर्थिक संरक्षण ही नहीं, वरन सामाजिक सुरक्षा भी प्रदान करता है। किन्तु समय के साथ–साथ परिस्थितियाँ बदलीं और संयुक्त परिवार में कई दोष उत्पन्न हो गए जैसे कि संयुक्त परिवार में कमाने वाले और न कमाने वाले को समान सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं, जिससे परिवार आलसी और अकुशल लोगों का केन्द्र बन जाता है। परिवार में होनहार बालकों के व्यक्तित्व का विकास नहीं हो पाता, क्योंकि यहाँ मूर्ख और बुद्धिमान सभी के साथ समानता का व्यवहार किया जाता है। ऐसे परिवारों में स्त्रियों की दुर्दशा होती है। उन्हें कठोर नियंत्रण में रहना और कभी–कभी गुलाम की तरह जीवन व्यतीत करना पड़ता है। ऐसे परिवार में स्त्रियों की स्वतंत्रता का हनन होता है।

आज भारत औद्योगिक अवस्था की ओर अग्रसर हो रहा है और कृषि की प्रधानता धीरे–धीरे कम होती जा रही है। ऐसी अवस्था में संयुक्त परिवार का स्थान एकाकी परिवार लेते जा रहे हैं। क्योंकि संयुक्त परिवार बदली हुई परिस्थितियों के अनुरुप आवश्यकताओं को पूर्ण करने में सक्षम नहीं है। वर्तमान में नगरों

में अधिकांशतः उत्पादन कार्य मशीनों की सहायता से होता है। औद्योगिकरण के परिणामस्वरूप अनेक नये व्यवसायों का जन्म हुआ। इन उद्योगों में काम प्राप्त करने के लिए घर छोड़कर लोग औद्योगिक केन्द्रों की ओर गए। परिणामस्वरूप प्राचीन कुटीर व्यवसायों का ह्रास हुआ। स्त्रियों के लिए नौकरी के अवसर बढ़े। अब स्त्रियाँ भी घर छोड़कर उद्योगों में काम पर जाने लगीं। औद्योगीकरण ने नगरीकरण को जन्म दिया। नगरों में मकानों की समस्या के कारण परिवार के सभी लोगों का साथ रहना कठिन हो गया। शहरों की तड़क–भड़क, शिक्षा व व्यवसाय के अवसरों ने भी युवा लोगों को अपनी ओर आकर्षित किया। आये दिन संयुक्त परिवार में होने वाले सास–बहू और भाइयों के पारस्परिक झगड़ों के कारण भी सदस्य अलग–अलग हो गये और संयुक्त परिवार के स्थान पर एकाकी परिवारों का प्रादुर्भाव होने लगा। शिक्षा के प्रसार, नगरीकरण और पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव के कारण स्त्रियों में स्वतंत्रता की भावना जागृत हुई। वे पढ़–लिखकर स्वयं अर्जन करने लगीं और संयुक्त परिवार की सत्ता से मुक्त होकर एकाकी परिवार में रहने के लिए बल देने लगीं। इससे भी एकाकी परिवार बनने लगे। परिवार के कार्यो में भी परिवर्तन आया है। जो कार्य पहले संयुक्त परिवार ही करता था, उन्हें अब विशिष्ट समितियाँ करने लगी हैं। परिणामस्वरूप संयुक्त परिवार का महत्व घटा है और एकाकी परिवार का प्रादुर्भाव हुआ है।

''आज औद्योगीकरण, भौतिकवाद तथा व्यक्तिवादी दृष्टिकोण के कारण संयुक्त परिवार टूटने लगे हैं। पश्चिमी देशों में विघटन की प्रक्रिया इतनी तीव्र है कि आत्मनिर्भर होते ही युवक माता–पिता से स्वयं को अलग कर अपना अलग परिवार बना लेता है। तब समस्या आती है, वृद्ध माता–पिता के सामने। यह समस्या तीन स्तरों पर है – शारीरिक, आर्थिक तथा भावात्मक।''[1] वृद्धावस्था में स्फूर्ति तथा आय के स्त्रोत के अभाव में वे पराश्रित हो जाते हैं। संतान के बिछुड़ने का भावात्मक आघात उन्हें और भी दयनीय बना देता है। इस समस्या से निपटने के लिए विदेशों में वृद्धों के लिए आश्रम बनाए जाने लगे हैं। हमारे देश में भी पश्चिमी देशों की भाँति एकल परिवारों का चलन होने लगा है, किन्तु संयुक्त परिवार की सत्ता अभी समाप्त नहीं हुई है। हाँ, इसका स्वरूप अवश्य बदल गया है। परिवार के मुखिया, उसके पिता तथा पितामह के भाइयों का सपरिवार एक साथ रहना आज 'संयुक्त परिवार' के अर्थ से बाहर निकल गया है। आज संयुक्त परिवार का अर्थ है – पति–पत्नी, उनकी संतान, पति के माता–पिता के आश्रित भाई–बहनों का एक साथ रहना। एकल परिवार में उसके सम्बंध पति तथा संतान के साथ है।

2. नौकरीपेशा महिलाओं की स्थिति : परिवार समर्पिता, द्वन्द्वग्रस्त मानसिकता, विद्रोह

नौकरीपेशा महिला के व्यक्तित्व पर बात करें तो वह समाज के एक समर्थ सदस्य के रूप में हमारे सामने आती है। बढती महँगाई, परिवर्तित जीवन–मूल्य, शिक्षा, जागृति एवं चेतना की लहर, कानूनी एवं संवैधानिक सुरक्षा आदि ने संयुक्त रूप से मिलकर नारी को – औसत नारी को पूरी तरह से प्रभावित किया है। ''पुरुष की कामकाजी दुनिया में कदम रखकर उसने अपने व्यक्तित्व में एक नया आयाम जोड़ा है। अपने दायित्वों को भली भाँति निभाकर स्वयं को 'अबला', 'छुई–मुई', 'लता सी कोमल' आदि विशेषणों से मुक्त किया है। वह लगातार सिद्ध कर रही है कि उसके व्यक्तित्व में 'आँचल के दूध' और 'आँखों में पानी' के अतिरिक्त उपलब्धियों से भरे दो हाथ भी हैं। संघर्ष की डगर पर बढ़ने को आतुर दो पाँव हैं। महत्वाकांक्षाओं को पालने–पोषनेवाला हृदय है। उन महत्वाकांक्षाओं को 'उपलब्धि' बना डालने का निश्चय करनेवाला पुष्ट मस्तिष्क भी है। वह अपने पूरे कद और ताकत के साथ पुरुषों के बीच खड़ी है।''[2] ऐसा नहीं है कि सन् 60 से पूर्व या स्वतंत्रता से पूर्व महिला नौकरीपेशा नहीं थी, वह नौकरी करती थी लेकिन उसकी स्वीकृति नहीं थी। यहाँ स्वीकृति से अर्थ सामाजिक स्वीकृति से नहीं है। यूं सामाजिक दृष्टि से भी महिला का कामकाजी होना प्रतिष्ठा एवं सम्मान का सूचक कहाँ समझा जाता था। महिला के कामकाज को विवशता अथवा अभाव से जोड़कर इस प्रवृत्ति को निरुत्साहित करने का प्रयास किया जाता रहा था। अतः इस दृष्टि से भी कामकाजी महिला ने आज परम्परा से चली आ रही जीर्ण–शीर्ण मान्यताओं को ध्वस्त किया है। उन्होंने अपने कामकाज के लिए समाज से स्वीकृति ग्रहण की है। लेकिन कामकाजी महिला के लिए कामकाज की सामाजिक स्वीकृति से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है – अपने अलग व्यक्तित्व की स्वीकृति। इस दृष्टि से वह पूर्ववर्ती कामकाजी महिलाओं से भिन्न है। उसमें हताशा या निराशा का भाव नहीं है। परम्परा को स्वीकारने की दुर्बलता, आकांक्षाओं को दबाने की विवशता तथा कायरता भी नहीं है। उसके अपने सपने हैं, रुचि है, आकांक्षाएँ हैं, जिनकी पूर्ति वह कर लेना चाहती है। इस आत्मविश्वास से उसके व्यक्तित्व ने जो रूप ग्रहण किया है, वह न कुचला जा सकता है, न तोड़ा जा सकता है। कहने का अभिप्राय यह है कि नारी ने समाज में अपना एक सुनिश्चित व्यक्तित्व धारण कर लिया है।

कामकाजी पुत्री का माता–पिता के घर में विशिष्ट स्थान होता है। जहाँ पिता किसी कारणवश परिवार का पोषण करने में असमर्थ हो तथा ज्येष्ठ पुत्र आयु में छोटा हो, वहाँ पुत्री को पिता तथा ज्येष्ठ पुत्र के लिए सम्मान अर्जित करती है। एकमात्र अर्जक सदस्य होने के कारण माता–पिता सहित पूरे परिवार की आँखें

उसकी ओर लगी रहती हैं। अन्य पुत्रियों की अपेक्षा कामकाजी पुत्री को महत्व भी अधिक दिया जाता है और उसकी बात का मान भी रखा जाता है। बदले में, ''कामकाजी पुत्री के दायित्व बढ़ जाते हैं। व्यक्तिगत सुख-दुख की चिंता न करके उसे परिवार के कल्याण की चिंता करनी होती है। फिर भी उसकी बराबरी ज्येष्ठ पुत्र के बराबर नहीं की जाती। हमारे समाज में कामकाजी बड़े पुत्र के सुख और भविष्य पर अवश्य टिकी होती हैं। उसके विवाह की चिंता होती है, लेकिन कामकाजी पुत्री के विवाह का प्रसंग भी नहीं उठाते कारण कि हमारी सामाजिक व्यवस्था जो विवाह होते ही लड़की तथा उसके धन पर माता-पिता के अधिकार को समाप्त कर देती है।''[3] अतः पुत्री पर आश्रित माता-पिता के पास दो ही विकल्प होते हैं – पुत्री का विवाह करके स्वयं भूखों मरना अथवा उसका शोषण कर परिवार के अन्य सदस्यों का पालन-पोषण करना। किन्तु ऐसा सदैव नहीं होता। अतः नौकरीपेशा पुत्री के दृष्टिकोण को आधार बनाकर तीन वर्गो में कामकाजी महिला का अध्ययन करेंगे।

1. परिवार समर्पिता 2. द्वन्द्वग्रस्त मानसिकता 3. विद्रोहिणी

1. परिवार समर्पिताः

इसमें हमने उन नौकरीपेशा महिलाओं को लिया है जिसने पूरी तरह से अपना सर्वस्व परिवार के सुख-दुख में लगा दिया है। 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' की सुषमा गर्ल्स कॉलेज में प्राध्यापिका है तथा हॉस्टल की वार्डन भी। पिता पक्षाघात से पीड़ित हैं। छोटे चार भाई-बहन हैं। माँ स्वार्थी एवं आत्मकेन्द्रित है। सुषमा की आय से घर चलता है और आय के एकमात्र स्त्रोत को माँ किसी भी हालत में खोना नहीं चाहती। इसलिए सुषमा के विवाह का प्रसंग भूलकर भी नहीं चलाती। प्रसंग चल जाए तो सुषमा पर सारा दोष डाल स्वयं एक किनारे हो जाती है कि जब सुषमा ही नहीं विवाह करना चाहती, तो मैं क्या करुं। सुषमा माँ की इस निर्लिप्तता के मूल में छिपी विवशता को जानती है। अतः स्वयं ही आगे बढ़कर कोंचने वाले का मुँह बंद कर देती है – ''इन लोगों के लिए कुछ करके मन में बड़ा संतोष-सा होता है। अपने लिए तो सभी करते हैं। छोटे भाई-बहनों का कुछ कर सकूँ, उस योग्य भी तो पिता जी ने ही बनाया है।''[4] सुषमा की बात में वास्तविकता नहीं है। एक अधूरापन बार-बार उसे कचोटता है। नील से परिचय, परिचय का प्रगाढ़ सम्बंध में बदलना, नील का उसके जीवन का आधार हो जाना – सुषमा के जीवन के अधूरेपन को भरने लगते हैं। लेकिन सुषमा सुख को आनंदपूर्वक भोग नहीं सकती। इसके तीन कारण हैं – प्रथम, पारिवारिक दायित्व उसके व नील के सम्बंधों के आड़े आ जाते है। नील को सदा उससे एक ही शिकायत रहती है कि

''मैं तुम्हारे अस्तित्व की केवल परिधि ही छू सका हूँ।''[5] दूसरे – सुषमा हीनभाव से ग्रस्त है। हीनभाव का कारण है, नील का उससे पांच वर्ष छोटा होना। नील के विवाह–प्रस्ताव को चाहकर भी वह गम्भीरतापूर्वक नहीं ले पाती, क्योंकि उसे भय है, जीवन में कभी नील अपने से बड़ी युवती से विवाह करने की भूल पर पश्चाताप न करे। तीसरे, सुषमा लोकापवाद से भय खाती है। वह जिस कॉलेज में नौकरी करती है, वहाँ किसी की निजी जिन्दगी नहीं है। वहाँ व्यक्ति को कॉलेज के अनुशासन और नैतिक वर्जनाओं में बँधकर जीना होता है। सुषमा–नील सम्बंध कॉलेज की आचारसंहिता में दण्डनीय अपराध है और दण्ड एक है – नौकरी से त्यागपत्र। ये तीनों कारण मिलकर सुषमा को मानसिक रूप से रुग्ण कर देते हैं। वह आत्मपीड़न में सुख पाने लगती है। नील सुषमा के जीवन के सबसे बड़े दायित्व को अपना दायित्व बनाने को तैयार है। विवाहोपरान्त उसके परिवार के लिए सब कुछ पूर्ववत् करते रहने का वचन देता है। किन्तु वह नील से प्रेम का इतना बड़ा मूल्य चुकाने को नहीं कह सकती। वह नील से सम्बंध विच्छेद करके सीनियर ग्रेड और वार्डनशिप का अतिरिक्त भत्ता लेकर अपने परिवार को चिन्तामुक्त कर देना चाहती है। अतः सुषमा में त्याग व बलिदान का इतना अधिक प्राचुर्य है कि उसने अपने जीवन का सन्तुलन खो दिया है।

त्याग, बलिदान, आत्मपीड़न का ठीक यह भाव 'छाया मत छूना मन' की वसुधा में भी है। ''रुग्ण पिता, विलासिनी माँ, आवारा बहन, अबोध भाई, घर की विपन्नता –इन सबने वसुधा को समय से पहले प्रौढ बना दिया है। उसके जीवन लक्ष्य को परिवार के सदस्यों के पोषण तक सीमित कर दिया है। वसुधा के लिए अपना जीवन, अपना भविष्य, अपना सुख, सब कुछ महत्व नहीं रखता। महत्वपूर्ण, बल्कि इससे भी अधिक आवश्यक है तो एक चीज – देवेन का प्रेम जो उसका आत्मबल भी है।''[6] घर से भाग गई बहन कंचन को ढूंढने में जमीन–आसमान एक कर देना, उसके विवाह के लिए दौड़–धूप करना, दहेज की लम्बी–चौड़ी राशि जुटाना – वसुधा के त्याग को काफी बड़ा बना देते हैं। किन्तु इसके लिए दहेज की राशि जुटाने के लिए अपने शरीर का सौदा करना, व्यक्तिगत खर्चों में कमी करना, भोजन न करना, बीमारी को छिपाना – ये कुछ ऐसे बिन्दु हैं जो वसुधा को आत्मग्लानि से पीड़ित करते हैं। इसी प्रकार 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' की तरह माँ द्वारा वसुधा का शोषण तथा कंचन के प्रति अतिरिक्त दुलार वसुधा के मन में आत्मपीड़न उत्पन्न करते हैं।

'पचपन खम्भे लाल दीवारें' की सुषमा को कम से कम सम्मान तो मिलता है लेकिन 'नगरपुत्र हंसता है' की माधवी को यह सम्मान भी नहीं मिलता। परिवार के अर्थाभाव के कारण एक तो वह परिवार से दूर रहकर दफ्तर की उबाऊ नौकरी करने को बाध्य है। दिल्ली जैसी महानगरी में अकेले रहकर उसे संघर्ष भी करना है, वह भी दोहरा – शारीरिक माँगों से भी और अकेलेपन से उत्पन्न मानसिक तनाव से भी। पुरुष मित्र बनाकर वह इन उद्देश्यों की पूर्ति कर लेना चाहती है, किन्तु उसके सम्पर्क में आने वाला प्रायः हर पुरुष उसे स्वार्थी व कुण्ठित कहकर चला जाता है। माधवी वास्तव में ऐसी नहीं है। उसके मित्र प्रवीण का माधवी के प्रति व्यवहार फिर भी ठीक है। ''दर-असल बात यह है कि माधवी भी बहुत सताई हुई है। यह समझो दया की पात्र है। गाँव में माँ–बाप, भाई–बहन बहुत बड़ा परिवार है। आमदनी का कोई जरिया नहीं। यह यहाँ नौकरी करती है तो गाँव में परिवार पलता है।''[7]

पिता के जीवित होते हुए भी परिवार को पालने की जिम्मेदारी 'दो लड़कियाँ' की रंजना पर है। वह स्वयं कहती है, ''मैं किसी शौक को पूरा करने के लिए या फैशन पूरा करने के लिए नौकरी नहीं करती। मैं काम इसलिए करती हूँ कि घर की आवश्यकताएँ पूरी हो जाएँ। परिवार के लोगों को दोनों समय का भोजन मिल सके।''[8] ''एम.ए. पास रंजना को अपनी योग्यता के अनुसार नौकरी नहीं मिल पाई है। वह दफ्तर में मामूली नौकरी पर है। वेतन कुल पाँच सौ रुपये और वह भी आरम्भ में नहीं, नौकरी के चार साल बाद। इतनी कम आय में परिवार का निर्वाह कठिन ही नहीं, असम्भव भी है। अतः मजबूर होकर न चाहते हुए भी रंजना को मालिक सेठ कनौड़िया की हर कुत्सित इच्छा पूर्ण कर घर में अतिरिक्त पैसा लाना पड़ता है।''[2]

इसी तरह 'बँटता हुआ आदमी' की सुनन्दा को देह को माध्यम बनाकर अर्थोपार्जन करने के लिए विवश होना पड़ता है। ''सुनन्दा का सारा परिवार माँ, भाई–बहनें उसके हैं। पर पिता उसके नहीं हैं। ''उसके 'अपने' पिता उसके बाल्यकाल में स्वर्ग सिधार गए थे। सुनन्दा की माँ ने अपने चार बच्चों के कल्याण व गरीबी से मुक्ति पाने के लिए एक ही उपाय सोचा – पुनर्विवाह। किन्तु दुर्भाग्यवश पतिरुप में जिस पुरुष का वरण किया, उसने शराब व जुए में लिप्त होकर न केवल संपूर्ण परिवार को दरिद्रता के अथाह सागर में डूबोया, बल्कि बड़ी बच्ची सुनन्दा की तरुणाई को भी दाग दिया।''[10] ''गरीबी के कारण सुनन्दा न अधिक पढ़ पाई और न गन्दे माहौल में रहने के कारण कुछ सीख पाई। ऐसी अवस्था में बम्बई जैसी महानगरी में अल्पशिक्षिता सुनन्दा कैसे और कौन–सी नौकरी प्राप्त करती? अतः अंतिम विकल्प के रूप

में उसके सामने एक ही मार्ग है – फिल्मों में काम पाना। काम उसे हर कीमत में पाना है क्योंकि अपने भाई–बहनों को वह मंझधार में नहीं छोड़ सकती।''[11]

''सुनन्दा को पैसे की अवश्यकता है ताकि दरिद्रता तथा असुरक्षा के कारण मिले सारे अपमान, लांछन व दुःख वह धन की ओट में छिपा सके।''[12]

''इस प्रकार नौकरी करना उसकी मजबुरी बन जाती है। साढ़े बारह साल की कच्ची वय में शरीर के सौदे की कड़वी सच्चाई जान जाने वाली सुनन्दा शरीर को पवित्र वस्तु नहीं मान पाती। शरीर उसके लिए आगे बढ़ने की पगडण्डी बन जाता है। जिस पर चल कर वह फिल्म–उद्योग के लोकप्रिय अभिनेताओं के साथ छः सात फिल्मों के 'काण्ट्रैक्ट' साइन करने में सफल होती है।''[13]

स्पष्ट है कि परिवार की रक्षा के लिए महिलाएँ कितना त्याग करती हैं। वह मजबुरी में देह के स्तर पर की जाने वाली सौदेबाजी को भी स्वीकार करने को विवश है। यह सौदेबाजी एक ओर उसकी योग्यता का अपमान है तो दूसरी ओर उसके शोषण का प्रमाण भी।

'पतझड़ की आवाजें' की अनुभा भी शरीर को माध्यम बनाकर नौकरी या पदोन्ति पाने की पक्षधर नहीं है। पिता की लगभग बेकारी के कारण ''अनुभा का परिवार उस बिल्डींग में रहने को विवश है जहाँ वेश्याएँ रहती हैं। चकलेनुमा बिल्डींग में प्रवेश करने की ग्लानि, ऊपर से नीचे आने वाली घुंघरुओं की आवाज़ और जीने में लुढ़कते–लिपटते ग्राहकों के प्रति वितृष्णा, ठीक ऊपर के कमरे में चल रहे कार्य–व्यापार की कल्पना मात्र से भयमिश्रित लज्जा तथा पूरे कुटुम्ब के साथ एक ही कमरे में ठुंसे रहने की छटपटाहट – अनुभा के व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बन गए हैं। इनसे छुटकारा पाने का एक मार्ग है – ''नौकरी करके परिवार के आर्थिक स्त्रोत बढ़ाना। किन्तु देह के मूल्य पर नहीं। अतः उसे दो बार टाइपिस्ट की नौकरी से भी हाथ धोना पड़ता है।''[14]

स्पष्ट है कि परिवार के दायित्वों को निभाते–निभाते वह अपने आपको पूरी तरह परिवार समर्पित कर देती है। आत्मनिर्भर होते हुए भी वह अपनी कमाई को अपनी इच्छा से खर्च नहीं कर सकती है। न अपने

भविष्य के प्रति कोई निर्णय ले सकती है। प्रायः माता–पिता भी कमाऊ बेटी के भविष्य के प्रति उदासीन हो जाते हैं और अन्य सदस्यों के प्रति चिन्तित, क्योंकि अगर कमाऊ बेटी घर से चली गई तो परिवार का पोषण कैसे होगा? माता–पिता की यह स्वार्थपरता उन्हें तिलमिलाती अवश्य है, किन्तु अन्य कोई विकल्प न होने के कारण उन्हें यह सहन करना पड़ता है। इसके विपरीत, कई महिलाओं में अपने जीवन को स्वतंत्रतापूर्वक जीने की आकांक्षा होती है। तब माता–पिता की स्वार्थपरता तथा जीवनभर कमाई का जरिया बने रहने की विवशता उनमें विद्रोह की भावना पैदा करती है। 'नावें' उपन्यास की मालती इसका उदाहरण है। मालती ''पिता के जीवित रहते हुए भी एक सम्पूर्ण पिता का दायित्व''[15] निभा रही है। पिता रिटायर्ड हैं और घर में स्वयं को सबसे छोटा महसूस करते हैं। यों भी नौकरी करते हुए वे घर की समस्त आवश्यकताएँ पूरी नहीं कर पाते थे। अतः घर पर आर्थिक तनाव की काली छाया सदैव मंडराती रही। यही कारण है कि माँ बात–बात पर चिड़चिड़ाती रहती है। भाई–बहन सब अपने आप में अलग–अलग आत्मकेन्द्रित हैं। ''स्वयं मालती फीस माफ करवाकर, कॉलेज से किताबें लेकर पढ़ाई करती है। एम.ए. पास करके पास करके पढ़ाई से मुक्ति पाने का राहत भरा एहसास लेकर वह उल्लासित नहीं हो पाती। उल्लासित होती है माँ कि 'चलो अच्छा हुआ। इस खर्चे से अब मुक्ति मिली। अब कुछ दूसरा डौल करने की सोचो।''[16] माँ की यह अपेक्षा मालती के तनाव को बढ़ा देती है। अब उसे अपनी डिग्री के सहारे नौकरी खोजनी है और परिवार का पेट पालना है। ''मालती को नौकरी करते हुए यह बात सबसे खराब लगती है कि उसके माता–पिता उसकी तरफ ध्यान क्यों नहीं देते? सोम जी की पुस्तकों का अनुवाद करके जब वह घर में अधिक पैसा लाती है, तो भी वे अतिरिक्त आय का कारण नहीं पूछते।''[17]

''जब व्यस्तता के कारण गाज़ियाबाद में रहने का बहाना बनाकर वह सोमजी के साथ अवैध गर्भ को छुपाने कलकत्ता जाती है, तब भी वे चिन्तित नहीं होते। क्योंकि उनके लिए वेतन प्रमुख है और इस दौरान सोमजी के प्रबंध के कारण वेतन जितनी राशि उन्हें बराबर मिलती रही है। वेतन लाने वाली पुत्री कैसी है, किन परिस्थितियों में है, यह बात जानने का उन्हें अवकाश नहीं।''[18] ऐसी अवस्था में मालती को लगता है कि माता–पिता उसके अवैध गर्भ को स्वीकार कर उसे ममत्व भरा संरक्षण अवश्य देंगे। किन्तु माँ के दुत्कारे जाने पर वह घर त्याग कर चली जाती है।

'पतझड़ की आवाजें' की अनुभा भी अपनी मर्जी से जीवन जीने की लालसा में परिवार से अलग स्वतंत्र जीवनयापन करने लगती है।''[19]

इस प्रकार से स्पष्ट है कि परिवार में पिता के नौकरी न करने के कारण बेटी को ही पिता और परिवार के सम्पूर्ण दायित्व निभाने पड़ते हैं। आर्थिक रुप से आत्मनिर्भर परिवार में कामकाजी पुत्री का स्थान परिवार के अन्य सदस्यों की भाँति प्रायः सामान्य होता है। उसकी आय से परिवार के आर्थिक स्त्रोत बढ़ आवश्य जाते हैं, किन्तु परिवार के मूलभूत खर्चे पिता या किसी अन्य सदस्य की आय से चलते रहते हैं। अतः कामकाजी पुत्री के वेतन को या तो उसके विवाह के लिए रख लिया जाता है या परिवार के लिए ऐश्वर्य सामग्री जुटाने के लिए उसका उपयोग किया जाता है। आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो जाने पर उसका व्यक्तित्व आत्मविश्वास से परिपूरित हो जाता है। अपने जीवन तथा भविष्य के प्रति उसका एक निश्चित दृष्टिकोण बन जाता है। बिना किसी हस्तक्षेप के वह अपने ढंग से जीना चाहती है। इससे उसमें आत्मविश्वास आता है। यही कारण है कि ऐसी कामकाजी पुत्रियों का जीवन परिवार के समानान्तर चलता रहता है। माता–पिता के साथ उसके सम्बंधों में समानता एवं औपचारिकता आती है। अपनी इच्छा से विवाह करना, पुरुषों के साथ मैत्री करना, रात को देर तक घर से बाहर रहना, आदि बातों पर पीढ़ियों का अन्तराल स्पष्ट संघर्ष का कारण बनता है। जिसमें कामकाजी पुत्रियाँ न तो माता–पिता के अनुचित दबाव तले घुट–घुट कर जी सकती हैं और न उनके किसी निर्णय को स्वीकार करने को बाध्य होती हैं। गैर कामकाजी पुत्री चाहते हुए भी ऐसा साहस नहीं कर सकती।

ऐसा नहीं है कि आर्थिक रुप से आत्मनिर्भर परिवार की सभी नौकरीपेशा महिला आत्मकेन्द्रित हो जाती है। जहाँ वे प्रारम्भ से अपनी अपेक्षा परिवार के प्रति चिंतित होती हैं, वहाँ अर्थोपार्जन के बाद भी दायित्व बोध उन्हें बाँधे रखता है।

'बेघर' की संजीवनी मूक बधिर माँ के प्रति चिंतित एवं सहानुभूतिपूर्ण है। माँ की उचित देखरेख के लिए वह नौकरी करती है। माँ की दवाओं का बिल देखकर भाभी जिस तरह मुँह बनाती थी, वह संजीवनी को सहन न था। दूसरे, पिता के व्यापार को हथियाकर नानू भाई जिस तरह अकड़ता है, और उसकी आय पर भाभी जिस तरह अपना स्वामित्व मानती है, उससे भी संजीवनी तिलमिला जाती है। पैसे–पैसे के लिए भाई–भाभी के सामने हाथ पसारना, घर में माँ तथा पिता की उपेक्षा देखना संजीवनी को स्वीकार्य नहीं। अतः नौकरी करके वह आत्मनिर्भर हो गई है। उसे संतोष है कि अब भाभी न उस पर रौब गांठ सकती है और न उसके किसी कृत्य की आलोचना कर सकती है। भाभी के अनुशासन से पूर्णतया मुक्त होकर उसे माँ की देखरेख करने का समय भी मिल जाता है और साधन भी।''[20]

'अपने पराए' की नीलिमा भी छात्र जीवन से अपनी विधवा माँ तथा छोटे भाई–बहनों के प्रति चिन्तातुर रहती है। नौकरी करने के बाद वह आर्थिक रूप से स्वतंत्र अवश्य हो जाती है, विनोद से प्रेम करने के बाद उससे विवाह करना चाहती है, किन्तु माँ से छिपकर या माँ की इच्छा का विरोध कर नहीं।''[21] आर्थिक स्वतंत्रता ने उसे अकेले जीना नहीं बल्कि परिवार के प्रति समर्पित होना ही सिखाया है।

2. द्वन्दग्रस्त मानसिकताः

इस वर्ग की नौकरीपेशा महिलाएँ अपने पारिवारिक दायित्वों के साथ व्यक्तिगत खुशियों तथा भविष्य के प्रति भी सजग हैं। ये महिलाएँ पिता की भाँति परिवार के पोषण का दायित्व अपने कंधों पर लेना चाहती हैं और सामान्य महिला की भाँति विवाह करके अपना अलग घर भी बसाना चाहती हैं। दोनों इच्छाओं को पूरा करना असम्भव है इसलिए विवाह की इच्छा का त्याग करके उन्हें अपना पूरा ध्यान परिवार पर ही लगाना पड़ता है। किन्तु इसके बावजूद वे अपने मन को मारने के पक्ष में नहीं हैं। ना ही वह अपने अकेलेपन से समझौता करने को तैयार हैं। इसके विपरीत पुरुष मित्रों के सान्निध्य में वे वैवाहिक सुख का आनन्द ले लेना चाहती हैं। 'दो लड़कियाँ' की रंजना को जीवित रहने के लिए किसी पुरुष का साहचर्य अनिवार्य जान पड़ता है। ''वह जानती है, विवाहित राजन के लिए वह एकान्त की सहचरी मात्र है''[22] ''उसके हृदय क्षेत्र में प्रवेशपाना उसके लिए संभव नहीं। फिर भी एकान्त क्षणों में उसे राजन की बाहों का सहारा चाहिए। राजन की देह में डूबकर दीन–दुनिया के दुःखों को भूल जाने का बहाना चाहिए।''[23]

पुरुष प्रधान समाज में आज भी पुरुष नारी को जिस्म मानकर उसका उपभोग कर लेना चाहता है। स्वयं ऐसा निमंत्रण देनेवाली महिला से वह स्वार्थपूर्ण मैत्री अवश्य करता है, पत्नी रूप में उसका वरण नहीं कर सकता क्योंकि पत्नी के लिए यौन–शुचिता तथा परम्परा का निकष उसके सामने आ जाता है। नारी की प्रतिक्रिया ठीक उसके विपरीत है। आगे बढ़कर स्वयं पुरुष का आहवान कर लेने वाली नारी भी संबंधों में स्थायित्व चाहती है। उसकी शारीरिक संरचना तथा मानसिकता और सामाजिक व्यवस्था इसके उत्तरदायी कारण कहे जा सकते हैं। नावें' (मालती), सुषमा–नील (पचपन खम्भे लाल दीवारें) तथा वसुधा–देवेन (छाया मत छुना मन) की भाँति महिलाओं को पुरुष मित्र चाहिए क्योंकि वह उनके जीवन में घिर आये खालीपन को भर सकता है। जो कि दैहिक भी और मानसिक भी। किन्तु यह मैत्रीभाव मात्र इन महिलाओ को संतोष प्रदान नहीं करता बल्कि उन्हें और भी अशान्त बनाता है। इसका कारण है –समाज

का भय, इस कारण छिपकर मिलना, या अपनी पसंद के पुरुष से विवाह न कर पाने की विवशता के कारण मानसिक तनाव का शिकार हो जाना। इस प्रकार समाज तथा परिवार से भयभीत होकर भी ये महिलाएँ सुख के क्षणों को भोगती अवश्य हैं, किन्तु हड़बड़ी में। अतः इनकी स्थिति ऐसी होती है कि सबकुछ पाने के बाद भी कुछ नहीं पा सकतीं। इसका परिणाम अवैध संतान के रूप में सामने आता है जो कुछ तो जन्म ले लेती हैं, कुछ जन्म के पूर्व ही मार दी जाती हैं। महानगरों में यह अधिक देखने को मिलता है।

3. विद्रोहिणीः

इस वर्ग की महिलाएँ पारिवारिक दायित्वों के अलावा अपनी खुशियों का भी ध्यान रखती हैं। निःसंदेह माता–पिता, भाई–बहन सब उनके अपने हैं, किन्तु उसका भी अपना जीवन है। फिर इसी की उपेक्षा क्यों? परिवार के सभी सदस्य अपने–अपने हितों पर दृष्टि केन्द्रित करते हैं। तो एकमात्र वही क्यों अपने सुख से मुँह मोड़े रखे। अर्थात् वह भी मानसिक उहापोह की शिकार होती हैं – तथा अपने भविष्य और आत्मसुख के प्रति सजग होती हैं।

'नावें' की मालती सोम जी के गरिमामय व्यक्तित्व से आकृष्ट होकर उनके प्रेम में बँध गई है। अतः जिंदगी की एकरसता तोड़ने के लिए वह स्वयं भी किसी की बाहों में सिमट जाने को आतुर थी। ''जब सोमजी की ओर से उसे ऐसा आहवान मिलता है, तो वह अस्वीकार नहीं कर पाती। वह धीरे–धीरे आयु में बडे, पद में बड़े, प्रतिष्ठा में बड़े सोमजी के इतने निकट पहुंच जाती है कि उनसे किसी पराएपन का प्रश्न नहीं रह जाता।''[24] इसका परिणाम जब मालती के गर्भ में पलने लगता है तो सोम जी तुरन्त अपनी महानता एवं भावुकता का खोल उतार यथार्थ स्थिति का साक्षात्कार करने लगते हैं। वे मालती को रुपया और सुख–सुविधाएँ देकर अपने किए का प्रयश्चित करना चाहते हैं। लेकिन रखैल बनकर रहना मालती को स्वीकार नहीं। वह उनके कुटुम्ब में पत्नी के रुप में रहना चाहती है। किसी की कृपा पर जीना मालती ने नहीं सीखा। गर्भस्थ शिशु के प्राणान्त का विचार भी वह सोच नहीं सकती क्योंकि ऐसा करने से उसकी आत्मा को ठेस पहुँचती है। अपने किए पर जब उसे लज्जा नहीं तो पश्चाताप कैसा? अतः सोमजी से नाता तोड़कर वह अपने माता–पिता के पास लौट आना चाहती है। उसे विश्वास है कि माता–पिता उसके इस अपराध को क्षमा कर उसे अपना लेंगे। आखिर उस परिवार में ''एक सम्पूर्ण पिता का दायित्व उसने निभाया है।''[25] किन्तु मालती यहाँ भी ठगी जाती है। माँ उसकी एक भी सुनने को तैयार नहीं। उसका गला दबाकर

अपमानजनक बातें करना शुरु कर देती है। मालती का स्वाभिमान उसे चुपचाप दयनीय बनकर यह सब सुनने–सहने नहीं देता। उसकी कमाई पर पलने वाले उसे ही आंख दिखाए? मालती उन्हें 'नृशंस हृदयहीन' की संज्ञा दे स्वयं ही उस घर से विदा ले लेती है। अब वह नौकरीहीन है, आश्रयहीन है, लेकिन आत्मबल से हीन नहीं है।

'पतझड की आवाजें' की अनुभा का माता–पिता से अलग होने का कारण अलग है। माता–पिता के साथ वह जिस बिल्डींग में शुरु से रहती आई है, वहाँ ऊपर की मंजिल पर वेश्याएँ भी रहती हैं। इस बात को लेकर जब से रमनेश से उसकी सगाई टुटी है, इस बिल्डींग के प्रति वह घृणा से भर उठी है। पिता की सुदृढ़ आर्थिक अवस्था न होने के कारण वह उनके सामने अन्यत्र जाने का प्रस्ताव नहीं रख सकती। अतः स्वयं अर्थोपार्जन करने पर तथा बाद में भाई के भी कमाने पर उसके मन में इस बिल्डींग से बाहर किसी सम्भ्रान्त स्थान पर रहने की इच्छा बलवती होने लगती है। लेकिन परिवार की उदासीनता को देखकर वह भड़क उठती है। उसे लगता है कि वे उसे साधन से अधिक और कुछ नहीं मानते। परिणामस्वरूप उनके उपेक्षापूर्ण व्यवहार से क्षुब्ध होकर उसे उनसे नाता तोड़ना तथा स्वतंत्र रूप से अलग रहना कहीं भी अनुचित नहीं जान पड़ता।''[26]

अतः अनुभा के निर्णय में आत्मसुख कम शोषण का प्रतिकार करने का भाव अधिक है। यह निर्णय उसने तभी लिया है जब परिवार की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हो गई है। इस प्रकार परिवार से अलग रहते हुए भी वह परिवार के प्रति समर्पित पुत्री के रूप में उभरकर सामने आती है।

अतः स्पष्ट है – माता–पिता द्वारा पुत्री का शोषण करना तथा शोषण में पिसते रहना, इन दोनों में क्रमशः आर्थिक तथा शारीरिक–मानसिक आवश्यकताएँ ही निहित हैं। माता–पिता द्वारा पुत्री का विवाह न करना उसे जीवन भर कमाई का जरिया समझना ऐसी कई विवशता हैं। प्राचीन काल में जब संयुक्त परिवार प्रणाली थी जब पुत्री को इस प्रकार मजबूर होकर अर्थोपार्जन नहीं करना पड़ता था। जिस प्रकार विवाह के बाद पुत्र माता–पिता के पोषण का दायित्व उठाता है, उसी प्रकार पुत्री को भी विवाह के पश्चात् अपने माता–पिता की सहायता करने का अधिकार होना चाहिए। तभी अविवाहित पुत्रियों का शोषण समाप्त हो सकेगा। ''बम्बई उच्च न्यायालय के एक निर्णय के अनुसार पुत्रहीन अथवा पुत्रवान माता–पिता की वृद्धावस्था में देखभाल का दायित्व उनकी पुत्रियों का भी है, चाहे वे विवाहित हों या अविवाहित।''[27]

3. पति–पत्नी के बीच आने वाले तनावः

दाम्पत्य सम्बंध पति–पत्नी की आपसी समझ तथा थोड़ा पारिवारिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है। यही कारण है कि कई बार अशिक्षित और घरेलू कही जाने वाली महिलाएँ भी अच्छे दाम्पत्य सम्बंध भोगती हैं। जबकि सुशिक्षित तथा आधुनिक कही जाने वाली महिलाएँ दाम्पत्य सम्बंधों में आने वाली कटुता नहीं धो पाती। प्राचीन भारत में पति–पत्नी के भिन्न तथा निश्चित कार्यक्षेत्र होते थे। दोनों अपने–अपने कार्यो को करते थे और एक–दूसरे के प्रति आदर रखते थे। अतः दोनों में तनाव की गुंजाइश नहीं रहती थी। विवाह का मुख्य लक्ष्य वैयक्तिक हितों की पूर्ति न होकर परिवार तथा समाज के प्रति एक सामाजिक कर्तव्य था। इन कर्तव्यों के कारण वैवाहिक मनमुटावों को सार्वजनिक रूप से व्यक्त करने की कोई गुंजाइश नहीं रहती थी। किन्तु औद्योगीकरण, शहरीकरण, शिक्षा, धर्मनिरपेक्षता तथा ह्रासोन्मुख संयुक्त परिवार प्रणाली ने व्यक्ति, विशेषकर स्त्री के दृष्टिकोण में परिवर्तन ला दिया। अतः पति पत्नी दो विभिन्न इकाइयाँ बनकर अपने–अपने हित में खोकर अपनी व्यक्तिगत खुशियों को पूरा करने में लगे रहते हैं। इससे तनाव उत्पन्न होता है। अब महिलाएँ विवाह द्वारा शारीरिक, सामाजिक एवं आर्थिक आवश्यकताओं की संतुष्टि चाहती हैं।

हम मानते हैं कि नौकरी करना सम्बन्धों में तनाव लाने वाला कारण नहीं है। किन्तु फिर भी कहीं न कहीं सम्बंधों को प्रभावित अवश्य करता है। आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर तथा समाज में निश्चित 'स्टेटस' रखनेवाली नौकरीपेशा महिला के सामने व्यक्तित्व के टकराव, प्रतिस्पर्धा की समस्या हमेशा बनी रहती है । जिससे पति–पत्नी में आपसी तनाव की स्थिति बनी रहती है। अतः नौकरीपेशा होने के कारण तथा नौकरीपेशा होने के पूर्व भी पति–पत्नी के बीच आने वाले तनाव के कई कारण हैं।

भारतीय समाज आज जिस दौर से गुजर रहा है वहाँ परम्परागत तथा आधुनिक मूल्यों में द्वन्द्व होना स्वाभाविक है। नई और पुरानी मान्यताओं में समन्वय स्थापित करने के प्रयास किये जा रहे हैं। जहाँ एक ओर विवाह को जन्म–जन्म का अटूट सम्बंध तथा पति को परमेश्वर मानने का भाव है, वहीं आज विवाह को इच्छा व सुविधानुसार तोड़ दिया जानेवाला एक समझौता तथा पति को मित्र मानने का आग्रह भी है। पत्नी की दोहरी जिम्मेदारियों तथा विवाह के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण के कारण पति और पत्नी की निर्धारित भूमिकाओं में भारी अनिश्चितता आ गई है। क्योंकि कुछ भूमिकाओं को छोड़कर शेष में अब कोई अंतर नहीं है। अतः जहाँ पुरुष विरासत में मिले श्रेष्ठता के भाव से तना रहता है, वहीं पत्नी स्वावलम्बी एवं स्वतंत्र होने के कारण उत्पन्न अहम् से दीप्त रहती है। यही दोनों के सम्बंधों में टकराव का मूल कारण है।

निस्संदेह भारतीय पुरुष आज भी पुरुष होने के नाते परम्परा से मिले इस भाव को पूरी तरह त्याग नहीं पाया है, किन्तु काफी सीमा तक इससे उबर चुका है। यही कारण है कि उसने नारी को अपना साथी स्वीकार कर लिया है, किन्तु फिर भी वह नारी को अपने से श्रेष्ठ पद अथवा स्थिति में नहीं देखना चाहता। पत्नी की सामाजिक एवं आर्थिक श्रेष्ठता उसके अहम् पर चोट करती है। अतः आज भी कई नौकरीपेशा महिलाएँ पति से अधिक सामाजिक प्रतिष्ठा पाने के कारण वैवाहिक तनाव को झेल रही हैं। पत्नी की ऊँची सामाजिक एवं आर्थिक हैसियत जहाँ पति में हीनभाव उत्पन्न करती है, वहीं पत्नी में अहं का विकास भी करती है। किन्तु यही अहं आवश्यकता से अधिक विकसित हो जाने पर नकारात्मक दृष्टिकोण ग्रहण कर लेता है। 'आपका बंटी' की शकुन का अहम् भी पूर्व पति अजय से सीधी टकराहट का कारण बना है। अहम् में तनी शकुन कहा–सुनी हो जाने के बाद सुअवसर देख अजय से मधुर वार्तालाप कर उस फांस को निकालने की चेष्टा नहीं करती, बल्कि स्वयं भी उतनी ही रुष्टता तथा निर्लिप्तता दिखाकर उस मनमुटाव को और अधिक बढ़ा देती है। दोनों के सम्बंधों में दरार इसलिए निरन्तर चौड़ी होती रही क्योंकि दोनों दरार को पाटने की अपेक्षा अपने–अपने अदृश्य हथियारों को हवा में भांजते हुए लड़ाई के लिए सदैव सन्नद्ध रहे।''[28]

कामकाजी महिला निश्चय ही परिवार के आय के स्त्रोत एवं जीवन के स्तर में वृद्धि करती है। पुरुष की भाँति उसके कार्य, वेतन व श्रम का निश्चित तथा स्वतंत्र महत्व होता है। किन्तु भारतीय संदर्भ में पत्नी को पति पर आश्रित माने जाने की मान्यता के कारण कई बार महिला के कार्य व श्रम को इतना महत्व नहीं मिलता। पति की दृष्टि में यदि वह एक ओर गृहस्थी में कामकाज निपटाने वाली घरेलू महिला है तो दूसरी ओर सोने का अण्डा देने वाली मुर्गी भी। यहीं से नौकरीपेशा महिला के शोषण का चक्र शुरु होता है जो दाम्पत्य सम्बंधों की जड़–आपसी विश्वास को खोद डालता है। नौकरीपेशा महिला आर्थिक रुप से स्वतंत्र होते हुए भी स्वतंत्र नहीं है। उनकी स्थिति आश्रित घरेलू महिला से भी अधिक शोचनीय हो गई है। कभी–कभी पति–पत्नी के मध्य शारीरिक सम्बंध उनके आपसी लगाव को पुष्ट कर देते हैं। यौन सम्बंधों की अनुपस्थिति पति–पत्नी को अतृप्त छोड़ देती है जो दाम्पत्य सम्बंधों में निरसता उत्पन्न कर देते हैं। दोहरी भूमिका निभाने के कारण कामकाजी पत्नी, पति की इच्छा पर तत्काल समर्पण नहीं कर पाती और कभी–कभी काम भाव के प्रति उसकी लालसा समाप्त हो जाती है, जिसके कारण कभी–कभी पति वहशी हरकत करने लगता है।

'नरक दर नरक' की सीता गुप्ता के मन में शारीरिक व मानसिक क्लान्ति तथा पति द्वारा चरित्रहीनता के लांछन लगाए जाने के कारण कोई यौनेच्छा नहीं होती। उसे लगता है कि विनय के साथ उसके संबंध में न सम है, न योग। अतः उसने विनय की बिस्तर में साम्यवाद स्थापित करने की सब कोशिशे बेकार कर दीं।''[29] जरुरी नहीं कि यौन–सम्बंधों के प्रति अनिच्छा सदैव पत्नी की ओर से हो, ऐसा नहीं है। कभी–कभी तनावग्रस्त सम्बंधों के परिणामस्वरूप पति भी अनिच्छा जाहिर कर देते हैं। जहाँ यौन–सम्बंधों की अनुपस्थिति दाम्पत्य सम्बंधों में तनाव उत्पन्न करती है, वहीं दाम्पत्येतर सम्बंध भी आपसी सम्बंधों को खराब करते हैं। पति–पत्नी की परस्पर एकनिष्ठता भारतीय संस्कारग्रस्तता की उपज है। पति यदि अपनी पत्नी से समर्पण और इमानदारी की माँग करता है तो बदले में पत्नी भी पति से यही उम्मीद करती है। किन्तु प्रारम्भ से ही, भारतीय पुरुषों को एकाधिक स्त्रियों के साथ सम्बंध स्थापित करना अनैतिक नहीं लगता। पत्नी पति के इन सम्बंधों का विरोध भले ही न कर पाए, किन्तु उन्हें सरलता से सहन भी नहीं कर पाती। कई बार स्वभाव, रुचि एवं विचारों की भिन्नता भी दोनों में मतभेद का कारण होती है। जब इन्हें एक–दूसरे पर थोपने का प्रयास किया जाता है तब स्थिति और भी भयानक हो जाती है। इसलिए दोनों में सामंजस्य हो ऐसी कोशिश की जाती है जिससे दोनों के बीच पाई जाने वाली स्वभाव, रुचि एवं विचारगत भिन्नता को समझ कर पति अथवा पत्नी की भिन्न–भिन्न रुचियों, विचारों को सहना, स्वीकारना तथा उन्हें महत्व देना। अपने ही विचारों पर अड़े रहने की अपेक्षा साथी की रुचियों और विचारों को महत्व दिया जाता है, जिससे दोनों में तनाव की स्थिति प्रायः कम हो जाती है। आपसी समझदारी से यह संभव है। आपसी समझबूझ के अभाव में चूँकि व्यक्तिगत मान्यताओं को प्राथमिकता देने का आग्रह उत्पन्न होता है, अतः दूसरे को सहयोग देने का प्रश्न ही नहीं उठता। घर–परिवार–बच्चों की परम्परागत जिम्मेदारियों के साथ नौकरी की जिम्मेदारियों और परेशानियों को एकसाथ सहजतापूर्वक ढोना नौकरीपेशा महिला के लिए संभव नहीं। उसे पति का सहयोग अवश्य चाहिए। असहयोग की अवस्था में वह उससे विरक्त भी हो सकती है। 'नरक–दर–नरक' की सीता गुप्ता विनय के असहयोग से इतनी क्षुब्ध है कि पत्नी तथा माँ की अपेक्षा स्वयं को विनय के घर की नौकरानी तथा आया मानने लगती है।''[30] आपसी सुझ–बुझ के अभाव में पारस्परिक विश्वास के तन्तुओं को क्षीण कर संदेह का बीज–वपन भी करने लगता है। विनय (नरक–दर–नरक) जब–तब सीता के कॉलेज में समय–असमय फोन कर उसके विषय में पूछ–ताछ कर लिया करता है। इसमें पति की संकीर्ण मानसिकता दिखाई देती है। नौकरी पेशा महिलाओं को दोहरा दायित्व वहन करना पडता है। नारी शिक्षा तथा पश्चिमी प्रभाव के कारण हमारे यहाँ महिलाएँ अर्थोपार्जन के कार्य तो करने ही लगी हैं,

परन्तु सहस्त्राधिक वर्षो का पूर्वाग्रहीन पुरुष मानस अभी बदला नहीं है। फलतः महिला को नौकरी के साथ-साथ घर का 'ढसरडा' भी करना पड़ता है। ममता कालिया कृत 'नरक-दर-नरक' की मिसेज सिन्हा इस त्रासदी की शिकार हैं। इधर लड़कियाँ पढ़-लिखकर नौकरी करने लगी हैं, फलतः पारिवारिक दायित्वों को वहन करते-करते कई बार उन्हें अविवाहित रह जाना पड़ता है। 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' की सुषमा इसका उदाहरण है। कामकाजी महिलाओं का यौन शोषण एक आम बात है। पतझड़ की आवाजें, नावें आदि उपन्यास इसके उदाहरण हैं। नौकरी पेशा महिला को गृहकार्य के उपरान्त बच्चों की परवरिश, उनकी शिक्षा-दीक्षा, उनके होमवर्क आदि की चिंता भी करनी पड़ती है। कामकाजी महिला के जीवन में दाम्पत्यभंग होने की संभावना बराबर बनी रहती है। इसके कारण दाम्पत्य जीवन में दरारें आने के कई कारण हो सकते हैं। मन्नू भंडारी कृत 'आपका बंटी' इसका ज्वलंत प्रमाण है।

अतः स्पष्ट है कि दाम्पत्य संबंध में बिखराव लाने के लिए नौकरीपेशा होना कुछ हद तक उत्तरदायी रहा है, किन्तु इसके अलावा भी बहुत से कारण हैं जैसे पति-पत्नी की प्रकृतिगत भिन्नता, आपसी सामंजस्य का अभाव, स्त्री-पुरुष में मूलभूत अंतर मानने वाली परम्परागत विचारधारा तथा गैर कामकाजी महिला के वैवाहिक सम्बंधों को समान रूप से प्रभावित करने वाले घटक हैं। अपने से श्रेष्ठ पत्नी के प्रति ईर्ष्याभाव एवं हीनभाव, तथा पति के समान शिक्षित एवं अर्जक होने के कारण पत्नी द्वारा स्वयं को श्रेष्ठ समझना आदि कारण भी पति-पत्नी के रिश्तों में दरार पैदा करते हैं।

4. बच्चों की समस्याः

माता-पिता के आपसी सम्बंध संतान के भविष्य एवं विकास को पूर्णतया प्रभावित करते हैं। माता-पिता के सम्बंध यदि आपसी सूझ-बुझ और विश्वास पर टिके हों तो बच्चे स्वयं को सुरक्षित अनुभव करते हैं। इसके विपरीत माता-पिता के तनावग्रस्त सम्बंध बच्चों को हीनता, कुण्ठा, चिड़चिड़ापन, अकेलापन, भटकाव जैसे नकारात्मक मूल्य प्रदान करते हैं। माँ का नौकरीपेशा होना कोई प्रभाव नहीं डालता।

जीवन रूपी पाठशाला में माँ बच्चे की पहली गुरु होती है। जिसकी गोद में बच्चा आंख खोलने से लेकर जीवन के प्रारम्भिक पाठ पढ़ता है। माँ उसे संस्कार-कुसंस्कार प्रदान करती है। लालन-पालन के माध्यम से उसके जीवन को एक विशेष दिशा की ओर अग्रसर करती है। इस प्रकार बच्चे के लिए माँ का

महत्व महत्वपूर्ण है। कभी–कभी नौकरीपेशा महिलाएँ पूरी तरह से बच्चों का ध्यान नहीं रख पातीं, इसलिए कुछ घण्टों के लिए बच्चों को किसी दूसरे के देखरेख में रखना पड़ता है इससे माँ को भी तनाव रहता है और बच्चे भी अपने आप को असुरक्षित महसूस करते हैं। आज संयुक्त परिवार प्रणाली लगभग खत्म हो गई है। उसके स्थान पर एकल परिवार का चलन है। संयुक्त परिवार में बच्चे बड़ों की देखरेख में आसानी से पल जाते थे किन्तु अब माँ–बाप को क्रश या किसी दूसरी जगहों का सहारा लेना पड़ता है। माँ–बाप का दाम्पत्येतर सम्बंध या माँ का नौकरीपेशा होना बच्चों पर सदैव विपरीत प्रभाव ही नहीं डालता। इससे संतान सही–गलत पहचान करना सीखती है वहीं समय से पूर्व समझदार, गम्भीर तथा उत्तरदायी भी हो जाते हैं।

'नावें' की नीलिमा बचपन से ही माता–पिता के असहज दाम्पत्य सम्बंधों की साक्षी एवं भोक्ता रही है। माँ का अकारण चिढ़े रहना, साथ रहते हुए भी पति से सम्बंधहीनता बनाए रखना तथा पिता की शारीरिक एवं मानसिक अतृप्ति नीलिमा की तीव्र दृष्टि से छिपी नहीं है। अपराध–बोध से ग्रस्त माँ मालती अपनी दृष्टि से जीवन जीती रही और सौतेले पिता विजयेश नीलू को अपना नहीं मान पाए। फलतः माता–पिता के होते हुए भी नीलू स्वयं को अनाथ अनुभव करती है। उसके मन में 'माता–पिता' का सम्मिलित प्यार पाने की ललक है।''[31] इसी कारण वह इधर–उधर भटकती रहती है, उद्दण्ड होती चलती है। अजय के साथ घूमने तथा अपनी इच्छा से चुपचाप विवाह रचाने के मूल में नीलिमा की इसी उद्दण्डता को लक्षित किया जा सकता है। विवाहोपरांत अपनी माँ को लिखे एक पत्र में वह स्वीकार करती है कि अजय के साथ सम्बंध बनाना और कुछ नहीं, ''तुम्हारी ओर से मुझे बांधकर रखने की कोशिश, जबरदस्ती सही राह पर चलाने की तुम्हारी ललक के विरुद्ध यह एक प्रकार की प्रतिक्रिया' ही थी।''[32]

अकेले होने की प्रतिक्रिया ने नीलिमा को समझदार तथा परिपक्व भी बना दिया है। इसी कारण वह अपने प्रति पिता के घृणाभाव को जानते हुए भी उनकी निरीहता समझती है। विजयेश के व्यवहार से नीलिमा जान गई है कि वह घर में अपने अस्तित्व के औचित्य के प्रति शंकालु है। अतः घर छोड़कर जाना चाहता है। इस त्रासद परिणति को रोकना उसे अपना दायित्व लगता है। फलस्वरूप अकेले उपेक्षित विजयेश से अधिकारपूर्वक स्नेह की याचना कर वह उसे बाँध लेती है। तब विजयेश को भी लगने लगता है कि इस घर में ''कोई है जिसे मेरी अपेक्षा है।''[33]

माँ का नौकरीपेशा होना बच्चों पर इतना नकारात्मक प्रभाव नहीं डालता, जितना माता–पिता के तनावग्रस्त संबंध। क्योंकि दिन का अधिक भाग वे माता–पिता के संयुक्त संरक्षण में बिताते हैं। अब ऐसे बच्चे अल्पायु में ही कुछ समय के लिए घर से बाहर अपरिचितों के बीच रहने के कारण अपेक्षाकृत अधिक सजग हो जाते हैं। और जहाँ विधवा, आश्रयहीन, अकेली, महिला जीवन की प्रतिकूलताओं से जूझते हुए कामकाज करके अर्थोपार्जन करती है और अपनी संतान के लिए माँ के साथ पिता की भूमिका का निर्वाह भी करती है, वहाँ संतान माँ के प्रति सामान्यतया सम्वेदशील तथा सहानुभूतिपूर्ण हो जाती है। माँ के संघर्षो के तले वे अपने प्रति मॉ के दायित्व–बोध का अवलोकन करते हैं, और आर्थिक एवं भावात्मक दोनों दृष्टियों से माँ पर आश्रित रहने के कारण उसके प्रति श्रद्धा एवं कृतज्ञता से भर जाते हैं। और बड़े होने पर माँ की जिम्मेदारियों में हाथ बँटाने का भाव उनमें आ जाता है। अतः गम्भीर उत्तरदायित्वपूर्ण एवं निष्ठावान संतान के रूप में उनका विकास होता है। अधिकांशतः माँ का व्यक्तित्व ही मुख्य रूप से संतान के व्यक्तित्व एवं चरित्र का निर्माण करता है। यदि माँ में स्वार्थ का अभाव होगा और संतान के उज्जवल भविष्य की ओर ध्यान होगा, तब ऐसी अवस्था में संतान भी माँ के प्रति अपना दायित्व समझने लगती है। 'अपने पराए' की नीलिमा इसकी उदाहरण है। इसने अपनी माँ के दुखों एवं संघर्षो को भोगा नहीं है, किन्तु उनकी वेदना को निकट से देखा है, गहराई से अनुभव किया है। वे जीवन में जो भी है, उसके लिए स्वयं को माँ का ऋणी अनुभव करती है। माँ का विरोध वह कभी नहीं करना चाहती।

भीष्म साहनी की 'कड़ियाँ' उपन्यास में भी महेन्द्र और प्रमिला दोनों के झगड़े और कलह का शिकार पप्पू को होना पड़ता है। वह मजबूरन अनाथों सी जिंदगी जीने पर विवश हो जाता है। वह अपने पिता से हमेशा सहमा–सहमा सा रहता है। आठ साल का है पर पेशाब नेकर में कर देता है। इस उपन्यास में भी बच्चे की दयनीय स्थिति को गहराई से उभारा है।

माता–पिता के दाम्पत्य संबंध, माँ का व्यक्त्तिव तथा पारिवारिक परिस्थितियों का संयुक्त प्रतिफलन ही संतान की मानसिकता का निर्माण करता है। यह सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों ही हो सकता है। परम्परा से संतान माँ के पास रहती आई है। वह माँ से जुड़ी रहती है किन्तु आज माँ की व्यस्तता के कारण वह पिता से अधिक जुड गई है। पिता के साहचर्य ने असमय उसे काफी व्यावहारिक, कुशल एवं स्वार्थी भी बना दिया है।

5. तलाक की समस्याः

हमारा भारतीय समाज संक्रमण के जिस दौर से गुजर रहा है, वहाँ परम्परागत तथा आधुनिक मूल्यों में द्वन्द्व होना स्वाभाविक है। किसी एक सुनिश्चित मान्यता के प्रतिष्ठित न होने के कारण नई व पुरानी मान्यताओं के प्रतिष्ठित कराने के प्रयास किए जा रहे हैं। इसलिए जहाँ एक ओर विवाह को जन्म–जन्म का अटूट सम्बंध तथा पति को परमेश्वर मानने का भाव है, वहीं विवाह को इच्छा व सुविधानुसार तोड़ दिया जाने वाला एक समझौता, तथा पति को मित्र मानने की मान्यता भी है। किन्तु आज किसी भी मान्यता के स्थापित न होने के कारण ''अति आधुनिक पति–पत्नियाँ' भी यह भली भाँति नहीं समझ पा रहे कि दोनों के बीच अधिकार की भूमिका कैसे निभायी जाए।''[34] आज कुछेक भूमिकाओं को छोडकर शेष में न अब कोई अंतर है और न उन्हें एक–दूसरे से भिन्न किया जा सकता है।

मधुर दाम्पत्य सम्बंध पारस्परिक विश्वास, प्रेम एवं सद्भावना की नींव पर टिके होते हैं। इन गुणों को जबरदस्ती आरोपित नहीं किया जा सकता। इन्हें अर्जित करना पड़ता है। किसी के कहने से इन्हें ग्रहण नहीं किया जा सकता, अपने अंदर से अपनी इच्छा से पैदा करना पड़ता है। यह तभी संभव है जब पति–पत्नी दोनों में आपसी सूझ–बुझ हो, साथी की भावनाओं का सम्मान करने का भाव हो। जहाँ दृष्टि संकीर्ण हो जाती है और व्यक्ति आत्मकेन्द्रित, वहीं दाम्पत्य सम्बंधों में दरार पैदा होने लगती है। जिससे अधिकांश परिस्थितियों में पति तनावग्रस्त सम्बंधों का कारण बना है। पति के दाम्पत्येतर सम्बंधों के कारण पति द्वारा पत्नी की उपेक्षा व प्रताड़ना दाम्पत्य सम्बंधों की मधुरता चूस लेने को पर्याप्त होते हैं। ऐसे में यदि पति–पत्नी पर हाथ उठाए या मानसिक क्लेश पहुँचाए, तब स्थिति अत्यंत कष्टकर हो जाती है जिसका कोई स्थायी निदान नहीं है। है तो मात्र अल्पकालीन निदान – तलाक के रूप में। तलाक से शारीरिक यातना का अंत तो हो जाता है लेकिन उनकी आपसी यादें हमेशा साथ रहती हैं।

तनावग्रस्त दाम्पत्य–सम्बंधों की परिणति मुख्यतया तीन रूपों में हुई है – अनचाहा संबंध झेलने की विवशता, संबंध से मुक्ति–कामना तथा दाम्पत्येतर संबंध बनाकर दैहिक अथवा मानसिक क्षुधा की तृप्ति।

पति का सन्देही स्वभाव दाम्पत्य संबंधों को ठेस पहुँचाता है। पत्नी दिन–रात पति की शंकालू दृष्टि को नहीं झेल सकती, विशेषकर तब जब वह निरपराध हो। हमारे समाज में पति को कुछ भी करने का

अधिकार है। वह दूसरी स्त्रियों से संबंध भी बना सकता है, किन्तु पत्नी अगर किसी से हंसकर बात भी कर ले तो संदेह की दृष्टि से देखता है। उस पर शंका करता है। उसे प्रताड़ित करता है। कभी–कभी पति की उदासीनता भी वैवाहिक सम्बंधों को समाप्त करने लगती है। ये अधिकतर व्यक्ति की सोच पर निर्भर करता है। पति–पत्नी के संबंधों में ऐसा कोई बिन्दु दिखाई नहीं देता जिसे आधार बनाकर विवाद खड़ा किया जा सके या तलाक की बात सोची जा सके। पति द्वारा समस्त सुख–सुविधाएँ जुटाना, पत्नी के किसी काम में अनावश्यक हस्तक्षेप न करना, पत्नी के साथ नोंक–झोंक की नौबत ही न आने देना आदि कुछ ऐसे बिन्दु हैं जो सही होते हुए भी परिणति की दृष्टि में गलत साबित हो जाते हैं। उपर्युक्त समस्त बिन्दु पति–पत्नी के हिम शीतल सम्बंधों के सूचक हैं। जहाँ अपने–अपने दायरों में बंधकर पति–पत्नी एक–दूसरे के मार्ग में नहीं आते, बल्कि समानान्तर बहते चलते हैं। ऐसे सम्बंध निश्चय ही कटुता अथवा घृणा का भाव उत्पन्न नहीं करते, किन्तु ऊब, असंतोष तथा अव्यक्त पीड़ा से अवश्य दंशित करते हैं।

'उसके हिस्से की धूप' की मनीषा पति जितेन की अतिव्यस्तता तथा उदासीनता से बेतरह झुंझलाई हुई है। वैवाहिक जीवन की स्मृतियों को खोद–खोदकर निकालने पर भी वह एक क्षण ऐसा नहीं ढूंढ पाती जब औसत पति–पत्नी की भाँति दोनों ने अनाप–शनाप विषयों पर गपशप की हो।[35] जितेन से उसे सबकुछ मिला है – गाड़ी, धन–दौलत, भौतिक सुख–सुविदाएँ, बड़ा सा बंगला किन्तु फिर भी वह स्वयं को रंक समझती है। पति के प्रेम से शून्य उसकी झोली एकदम खाली है। वह जानती है जितेन उससे कहीं गहरे बंधा है। वह उससे बहुत प्रेम करता है, प्रेम का नाटक नहीं करता। मनीषा जितनी बोझिल जिन्दगी जी रही है, उसमें उसे प्रेम का हल्का–फुल्का प्रदर्शन अत्यंत आवश्यक लगता है। इसलिए ''वह जानबूझकर जितेन के प्रेम को अस्वीकारने लगती है। अतः अपने निर्दोष व्यवहार के कारण जितेन मनीषा की मानसिक यातना को समझ नहीं पा रहा है। असहज सम्बन्ध की पीड़ा को कुछ समय भुलाने के लिए नौकरी करती है। अतः स्वयं को या मनीषा को दोषी मानने का सवाल ही नहीं उठता। नौकरी मनीषा व जितेन के बीच दीवार का रूप ग्रहण कर लेती है क्योंकि अपने सहकर्मी मधुकर के सम्पर्क में आकर मनीषा अनायास वही सबकुछ पा जाती है जिसकी अपेक्षा वह जितेन से करती रही है।''[36] यही दोनों के तलाक का कारण बनता है। कभी–कभी व्यक्तित्वविहीन पति दाम्पत्य सम्बंधों को ठोस आधार नहीं दे पाता। संयुक्त परिवार में यह समस्या मुख्य रूप से सामने आती है जहाँ पति परिवार में किसी और सदस्य के अनुरुप चलते–चलते पत्नी के प्रति अन्याय करता है। वह अपनी पत्नी की ओर ध्यान ही नहीं देता ऐसे ही 'अपने पराए' की वन्दिता

को असहज दाम्पत्य सम्बंधों का कारण सास का उसके पति पर हावी होना है। ''लछमी जी अपनी माँ से इतने अधिक आतंकित हैं कि मुँह खोलकर गलत बात पर भी माँ का विरोध नहीं कर सकते। अतः वंदिता के समर्थन का प्रश्न कहाँ? वंदिता को वे ढाढ़स भी नहीं बँधा सकते। जो कर सकते हैं, वह यही कि वंदिता भी उनकी भाँति आँख मूंदकर माँ का कहना माने।''[37] वंदिता को लगता है लछमी जी का अपना कुछ भी निजी नहीं है। जो है, सब माँ का है – खुद के सोचने–समझने यहाँ तक कि बात करने तक का लहजा भी माँ का ही है। अतः वह आत्मिक तौर पर कभी अपने पति से जुड़ नहीं पाती है। नौकरी उपलब्ध करा दिए जाने पर वह ससुरालवालों के प्रति कृतज्ञ है। किन्तु उसे दुख है कि उसके नौकरीजन्य तनावों को बाँटने की अपेक्षा अपनी माँ के साथ मिलकर उसका शोषण कर रहा है।

नौकरी से उसके दाम्पत्य सम्बंध अप्रभावित रहते हैं, किन्तु नौकरी के कारण जितने समय वह घर से बाहर रहती है, उतने समय मानसिक तनाव से मुक्त रहती है। कामकाजी महिलाओं के तनावग्रस्त दाम्पत्य सम्बंधों का विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि तनाव लाने में पति–पत्नी दोनों ही उत्तरदायी हैं। दोनों ही स्वयं झुककर 'एड्जस्टमेंट' नहीं करना चाहते, दूसरे को झुकाना चाहते हैं। दोनों की अपनी–अपनी अपेक्षाएँ हैं जिनके पूरा न होने पर वे निराश व कुण्ठित होते हैं। तनाव के लिए मुख्य रूप से उत्तरदायी बात यह है कि दोनों ही संक्रमणकारी दौर में न तो परिवर्तित मूल्यों को समझ पाए हैं और न बदलती परिस्थितियों से समझौता कर सकते हैं।

तनावग्रस्त सम्बंध व्यक्ति के व्यक्तित्व, उसकी मानसिकता तथा सम्बंधों के स्थायित्व को काफी सीमा तक प्रभावित करते हैं। कोई भी सम्बंध तनावग्रस्त हो जाने पर जीवन को गति देने की अपेक्षा उसे जड़ कर देता है। उससे व्यक्ति में निराशा आ जाती है। जब दोनों में किसी प्रकार का सामंजस्य न हो, दोनों में अपनी–अपनी तरह जिन्दगी जीने की इच्छा हो तो उसका अंत तलाक ही होता है। 'आपका बंटी' की शकुन , 'उसके हिस्से की धूप' की मनीषा पति के साथ किसी भी प्रकार निभा नहीं पा रही थी। अतः तलाक के अतिरिक्त उसके पास अन्य कोई विकल्प नहीं था।''[38] 'अपने पराए' की वंदिता ने अपने अत्यल्प वैवाहिक जीवन में जिन त्रासद स्थितियों को भोगा है, उनसे आक्रान्त हो वह विवाह–बँधन को मन में अस्वीकार कर देती है। वंदिता का पति व्यक्तित्वहीन एवं दब्बू व्यक्ति है और सास लोभी एवं झगडालु। दहेज के लिए वह वंदिता को तरह–तरह के त्रास देती है। चरम परिणति स्टोव से वंदिता के जल जाने में है।

अस्पताल से लौटने पर वंदिता की मानसिकता में पर्याप्त परिवर्तन आता है। वह विवाह की अनिवार्यता के प्रति शंकित हो उठती है। ''पति व सास उससे क्षमा याचना करने आते हैं। कोई भी कानूनी कार्रवाई न करने की प्रार्थना करते हैं। वंदिता से घर लौट चलने का आग्रह करते हैं। उदार मन वंदिता उन्हें क्षमा कर देती है, किन्तु घर लौटने के अनुरोध को स्वीकार नहीं कर पाती। शादी की कीमत देकर उसने जो आत्मबल पाया है, वही उसके भविष्य का आधार है। अतः पति से अलग वह स्वतंत्र ढंग से जीवन जीना चाहती है।''[39]

तलाक के दुष्प्रभाव से सर्वाधिक बच्चे प्रभावित होते हैं। क्योंकि बच्चे माता–पिता के संयुक्त स्नेह व संरक्षण से वंचित रह जाते हैं, जो उनके स्वस्थ विकास के लिए अनिवार्य हैं। ऐसे बच्चे प्रायः आत्मकेन्द्रिय, जिद्दी तथा दब्बू हो जाते हैं। ''मां अथवा पिता किसी एक के साथ रहने के कारण उसे अनुकरण करने के लिए केवल एक आदर्श मिलता है। अतः उसके तौर–तरीकों को ग्रहण करना स्वाभाविक है। 'आपका बंटी' का बंटी माँ शकुन के साथ रहते–रहते बिलकुल लड़कियों सा हो गया है।''[40] तलाक लेने को उत्सुक माता–पिता बच्चे को 'चीज़' मानते हैं। वे हर कीमत पर बच्चे को अपने संरक्षण में लेना चाहते हैं। यह सही है कि इससे उनका अपनी संतान के प्रति प्रेम दिखाई देता है, किन्तु साथ ही बच्चे को हथियाकर जीवन–साथी को पराजित करने का दम्भ भी है। स्वयं शकुन के मन में यह भावना है कि बंटी का उपयोग करके शायद वह अजय से टूटे सम्बंध जोड़ सके। वह इस पर भी प्रसन्न है कि पुत्र के साथ न रह पाने की कचोट से अजय अवश्य ही बौखला उठता होगा।

अतः एक–दूसरे के साथ सामंजस्य रखकर, दूसरे की भावनाओं का सम्मान कर उसे समझने की इच्छा तथा अपने आप में परिवर्तन लाने की लोचशीलता जहाँ हो वहां इस तरह तलाक लेने की जरुरत नहीं पड़ती। अतः जहाँ व्यक्ति में समंजन करने का भाव आता है, वहां दूसरे को अपनी इच्छानुसार परिचालित करने का आग्रह भी कम हो जाता है। यही सफल दाम्पत्य सम्बंधों की कुँजी है।

6. परम्परागत नैतिक मूल्यों में विघटनः

आजादी के बाद तथा हमारे समाज में स्त्री शिक्षा के पश्चात कई परिवर्तन आये हैं। बढ़ती महँगाई के कारण परिवार की आवश्यकताएँ प्रायः एक व्यक्ति की आय से पूरी नहीं हो पातीं। अतः आर्थिक दबाव ने नारी तथा समूचे समाज के चिंतन को परिवर्तित किया है। आज नारी समाज के हर क्षेत्र में निपूर्ण है।

कभी–कभी मजबूरी में भी अपनी पारिवारिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नारी को नौकरी करने के लिए मजबूर होना पड़ा है। इससे कभी–कभी उनके पुरुष अधिकारियों ने उनका फायदा उठाया है, इसलिए नारी कभी मजबूरी में तो कभी अपनी इच्छा से दैहिक शोषण का शिकार हुई है। इससे हमारे परम्परागत नैतिक मूल्यों का विघटन हुआ है। अधीनस्त महिला कर्मचारी को महज एक शरीर समझकर उसका मनमाने ढंग से उपयोग करना आज भी पुरुष अधिकारी अपना अधिकार समझता है और एक महिला के साथ ऊब जाने पर वह किसी दूसरी महिला कर्मचारी पर दृष्टि गड़ाने में कोई बुराई नहीं समझता। इससे महिला अपने आप को असुरक्षित एवं अपराध–बोध से ग्रस्त समझती है।

'उस तक' की मुक्ता सामन्तवादी प्रकृति के सतपाल निगम की स्टेनो है। साढ़े तीन–सौ रुपये वेतन तथा आवश्यकता की मामूली चीजों के साथ उसने अपना स्वतंत्र जीवन शुरु किया है। भोजन तथा बस–किराए के अतिरिक्त वह अपने वेतन से कुछ भी खरीद पाने की स्थिति में नहीं है। यही मुक्ता बाद में जब सतपाल निगम की आँखों में चढ़ जाती है तो उसका पलट हो जाता है। ''पलंग से लेकर घर और परफ्यूम से लेकर विदेश–भ्रमण तक उसे सतपाल बाबू की कृपा से अनायास अयाचित मिल जाते हैं, किन्तु निःशुल्क नहीं। शुल्क उसे भरना पड़ता है। अपनी शामें तथा देह सतपाल के नाम करके। सतपाल के साथ शाम बिताकर मुक्ता को उसके मुँह के चेचक के दाग अपनी हथेलियों पर उगते नजर आते हैं।''[41] लेकिन वह अपने को पतन की गर्त में धकेलने से रोक नहीं पाती। कारण, ''एवज में उसे समृद्धि ही नहीं मिली, दफ्तर में रुतबा भी मिला है। इस अधिकार के बूते वह सतपाल से बिना पूछे चपरासियों की छुट्टी मंजूर कर देती है, दफ्तर में अपनी बात चलाती है।''[42] मुक्ता ने अपने यौवन और सौन्दर्य केबल पर सतपाल को अपनी मुट्ठी में किया है, लेकिन वह उसके प्रेम को अर्जित नहीं कर पाई है। वस्तुतः सतपाल प्रेम अर्तात् मानसिक लगाव का अर्थ जानता ही नहीं। इसलिए मुक्ता से उकता कर अन्य युवती खोज लेता है। तब मुक्ता खण्डहर की भाँति स्वयं को वीरान समझने लगती है। उस पुरुष से सम्बंध विच्छेद उसमें विधवा अथवा परित्यक्ता हो जाने की अनुभूति उत्पन्न करता है।

अतः यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि मुक्ता का व्यवहार पूर्णतया निर्दोष नहीं है। सतपाल की भाँति वह भी अपराधिनी है। ऐश्वर्यपूर्वक रहने के लिए वह यह सब स्वीकार करती है। मुक्ता की यह दुर्बलता आधुनिक भौतिकवादी व्यक्ति की दुर्बलता है जो स्वार्थसिद्धि हेतु सही–गलत, नैतिक–अनैतिक मूल्यो सभी

को जानबूझ कर अपने हाथों मिटा देती है। अपनी दुर्दशा के लिए किसी अंश तक वह स्वयं उत्तरदायी है।

'दो लड़कियाँ' की रंजना को भय है कि आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने की विवशता उस जैसी कच्ची उम्र की लड़कियों को हर ऐसे कुराह पर ले आती है जहाँ किसी न किसी पुरुष का सहारा लेकर उन्हें उसकी प्राइवेट सेक्रेटरी बनाम उपपत्नी बनना होता है। रंजना की पारिवारिक विवशताओं ने उसमें व्यावसायिक बुद्धि भर दी है। सेठ कनौड़िया की प्राइवेट सेक्रेटरी के रूप में जब उसे एक हजार रुपये वेतन के अतिरिक्त रहने के लिए मकान, फोन और कार भी मिलती है तो उसका माथा ठनकता है। वह शंकित हो जाती है कि क्या सेठ इस उपकार की कीमत नहीं वसूलेगा? और क्या परिवार की सुख–सुविधा के लिए वह अपने सतीत्व को दाँव पर नहीं लगा देगी? इस दुविधा को वर निरन्तर बनाए नहीं रख सकती। इससे मुक्त होकर कोई निर्णय लेना अनिवार्य है। इसलिए जब सेठ मीटिंग के बहाने उसे दिल्ली से फरीदाबाद ले जाता है और निस्तब्ध गेस्ट हाउस में उसके शरीर से खिलवाड़ करता है तो वह पाषाणवत् उसके सारे व्यवहार को झेल जाती है। वह स्वीकार करती है कि ''नौकरी ही की होती तो भी बात थी। यह तो नौकरी के साथ मैंने अपने आपको बेच दिया हुआ था।''[43] अतः रंजना अपनी नैतिकता को खुद ही दाँव पर लगा देती है।

जरुरी नहीं है कि सभी स्त्रियाँ एक जैसी होती हैं। कई महिलायें अपनी नैतिकता को किसी भी मूल्यों पर गिरने नहीं देती। अपनी नैतिकता को बरकरार रखने के लिए वह कोई भी कीमत देने को तैयार हो जाती है। पुरुष अधिकारी द्वारा कामकाजी महिला का शोषण तभी सम्भव है जब स्वयं महिला की इसमें सहमति हो। जहाँ महिलाएँ आत्म–सम्मान के प्रति सचेत हों, वहाँ अपने सतीत्व व प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिए वे कोई न कोई उपाय अवश्य ढूंढ लेती हैं। यह उपाय त्यागपत्र देकर पलायन कर जाना भी हो सकता है। और चारित्रिक दृढ़ता को हथियार बनाकर अधिकारी की लोलुपता पर अंकुश लगाना भी। 'पतझड़ की आवाजें' की अनुभा अपनी चारित्रिक दृढ़ता के बल पर सी.के. जैसे अधिकारी के चंगुल से बच निकली है। अनुभा सी.के. को अपना हितैषी समझती आई है। अपनी पारिवारिक कठिनाइयों तथा तनावों की बात उससे कर लेती है। सी.के. अनुभा की कार्यदक्षता, सौन्दर्य एवं वाक्–चातुर्य से प्रभावित है। उसे वह अपनी प्राइवेट सेक्रेटरी बनाना चाहता है। बड़े–बड़े होटलों के भव्य वातावरण तथा 'लांग ड्राइव' के दौरान बने रोमांटिक वातावरण मे वह प्रलोभन एवम् आश्वासन देकर उसे पूरी तरह अपने वशीभूत कर लेना चाहता है। हजार

से भी अधिक वेतन, उस वेतन से सम्भ्रान्त परिवेश में मकान खरीदने का स्वप्न, अंधकारमय अतीत से छुटकारा पाने की आशा – अनुभा को सी.के. के प्रलोभन पाश की ओर खींचने लगते हैं। वह समुद्र तट पर बनी काटेज में अकेले पिकनिक मनाने का प्रस्ताव स्वीकार कर लेती है। पदोन्नति के लोभ में अलग शख्सियत न बनकर सी.के. की अनुगूँज मात्र बन गई है। लेकिन फिर भी अपने मर्यादा–बोध को वह तिलांजलि नहीं दे पाती। ''पदोन्नति का मूल्य शरीर और वह भी इस सीमा तक – वेश्याओं के घृणित माहौल से निकलने के लिए वह स्वयं वेश्यावृत्ति नहीं कर सकती। उसे एक प्रश्न बार–बार कचोटता है कि व्यावसायिक आवश्यकताओं से उत्पन्न मशीनी ढंग के सम्बंधों को निभाकर क्या व्यक्ति सचमुच जिन्दा रह सकता है? क्या दिमागी तौर पर वह मर नहीं जाता?''[44] अनुभा में जीने की ललक है। नैतिक मूल्यों तथा सामाजिक मर्यादाओं के भीतर रहकर जीने की ललक है। अतः परम्परापोषित नैतिक मूल्य उसके लिए बेमानी हैं, जिन मूल्यों को वह तर्क की कसौटी पर खरा उतार सकती है, जो मूल्य उसकी अन्तरात्मा का समर्थन पा सकते हैं, जो सौदेबाजी नहीं है, वही उसकी दृष्टि में नैतिक मूल्य हैं। यही कारण है कि सी.के. के घृणित प्रस्ताव को ठुकरा कर पदोन्नति के अवसर को भी ठुकरा देती है। इसके विपरीत इस उपन्यास की उषा अत्यंत महत्वाकांक्षी, स्वार्थी तथा चापलूस महिला है। जिस पुरुष से कोई स्वार्थ सिद्ध होता है, उससे किसी भी सीमा तक अन्तरंग होना वह अनुचित नहीं मानती। उसका स्पष्ट सिद्धान्त है कि 'इस मर्द जात के साथ तभी सोओ, अगर माल हासिल होता हो या पोजीशन हासिल होती है।''[45] अपने इस सिद्धान्त के चलते वह कामचोर तथा अकार्यकुशल होते हुए भी सी.के. की पर्सनल सेक्रेटरी बन जाती है। अल्प वेतन में बड़ी–बड़ी दावतें देने में समर्थ हो जाती है। अतिथियों को महँगी शराब पिलाकर अभिभूत कर सकती है। वह नैतिक–अनैतिक में भेद नहीं करती। सी.के. के साथ शारीरिक सम्बंध स्थापित करने के बाद किसी अन्य पुरुष से विवाह करने में उसे कोई संकोच नहीं। अतः ऐसी महिलाएँ किसी के प्रति एकनिष्ठ नहीं होती। अधिकारी इनके निकट सफलता की सीढ़ी के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' की सुषमा कॉलेज के सेक्रेटरी की बुरी नीयत तथा अपमानजनक प्रलोभनों से घबराकर पलायन कर जाती है। वह स्वीकार करती है कि उसके जीवन में ऐसे अनेक अवसर आए जब वह अपने शरीर के मोल से धन और आराम पा सकती थी। लेकिन उसकी दृष्टि में धन से अधिक स्वाभिमान मूल्यवान है। अतः ऐसे प्रलोभनों को ठुकरा कर उसने संघर्ष की राह पकड़ी। अपनी नैतिकता को बरकरार रखा।

7. उन्मुक्त यौन प्रवृत्ति (आधुनिकता का प्रभाव):

स्वतंत्रता के पश्चात् देश की राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियों में जितनी तेजी से परिवर्तन आया है, उससे नारी को घर से बाहर निकलने, शिक्षा प्राप्त करने तथा स्वयं को अभिव्यक्त करने के विपुल अवसर मिले हैं। प्रायः देखा गया है कि शिक्षित महिलाएँ अपने व्यक्तित्व के प्रति अधिक सचेत होती हैं। परिस्थितियों का विश्लेषण करने की क्षमता तथा पुरुषों से होड़ लेने का भाव उनमें आ जाता है। समानता का दावा जहाँ उनके मन में सदियों से पल रहे हीन भाव को किसी सीमा तक दूर करता है, वहीं उनकी सहज कोमलता को भी समाप्त कर देता है। घर तथा समाज में पुरुष के सम्बल के बिना वे खड़ी नहीं हो सकती थीं, और खड़ी हो भी जाए तो पेट पालने का कोई जरिया उनके पास न था। आज बढ़ती शिक्षा, जागृति, आत्मनिर्भरता तथा कामकाज की विपुल सम्भावनाओं ने नारी के दृष्टिकोण में परिवर्तन ला दिया है। वह अब पुरुष को संरक्षण नहीं, मित्र अथवा साथी रुप में देखना चाहती है। पुरुष के समान स्वतंत्र व स्वावलम्बी हो जाना उसकी महत्वाकांक्षा बन गया है। यही कारण है कि अर्थाभाव न होते हुए भी अनेक महिलाएँ अर्थोपार्जन करके आर्थिक स्वतंत्रता के साथ रहती हैं। निस्संदेह महिला की पुरुष के समान योग्य एवं स्वावलम्बी होने की ललक सकारात्मक है। लेकिन जहाँ वह प्रकृतिप्रदत्त शारीरिक सीमाओं तथा समाज निर्मित वर्जनाओं को भूलकर उच्छृंखल हो जाती हैं, वहाँ समाज में नकारात्मक मूल्यों की सृष्टि करने लगती हैं।

कई महिलाएँ पारिवारिक जिम्मेदारियों को उठाने के कारण विवाह बंधन में नहीं बंध पातीं तो कुछ तो अपनी सभी इच्छाओं का त्याग कर देती हैं और कुछ महिलाएँ पारिवारिक दायित्वों के साथ व्यक्तिगत खुशियों तथा भविष्य के प्रति सजग हैं। ये महिलाएँ पिता की भाँति परिवार के पोषण का दायित्व अपने कंधों पर लेना चाहती हैं और सामान्य महिला की भाँति विवाह करके अपना अलग घर भी बसाना चाहती हैं। दोनों इच्छाओं की एक साथ पूर्ति असम्भव है। अतः विवाह की इच्छा का परित्याग कर उन्हें अपना सारा ध्यान शुष्क दायित्व निर्वाह पर लगाना पड़ता है। किन्तु इसके बावजूद वे अपने मन को मारने की पक्षधर नहीं हैं। न ही जीवन में घिर आए एकाकीपन और नीरवता से समझौता कर लेना चाहती हैं। इसके विपरीत पुरुष–मित्रों के सांनिध्य में वे वैवाहिक सुख का आनंद भोग लेना चाहती हैं। '''दो लड़कियाँ' की रंजना को जीवित रहने के लिए किसी पुरुष का साहचर्य अनिवार्य जान पड़ता है। वह जानती है, विवाहित राजन के लिए वह एकान्त की सहचरी मात्र है।''[46] ''उसके हृदय क्षेत्र में प्रवेश पाना उसके लिए संभव नहीं। फिर भी एकान्त क्षणों में विराट से विराटतर होते चले जाने वाले भय से मुक्ति पाने के लिए उसे राजन की बलिष्ठ

बाहों का सहारा चाहिए, राजन की देह में डूबकर दीन–दुनिया के दुःखों को भूल जाने का बहाना चाहिए।''[47]

'नगरपुत्र हँसता है' की माधवी की स्थिति और भी करुणाजनक है। पुरुष मित्रों से अन्तरंग होने के प्रयास में वह उनसे बराबर अपमानित होती रहती है। ''भीड़ में अकेले होने की अनुभूति ने उसे भीतर तक तोड़ दिया है। पहले प्रवीण, बाद में गुणाकर से परिचय होने पर उसे जिन्दगी में कुछ अर्थ, कुछ रस दिखाई देने लगता है। उसके तन और मन की भूख 'देहलीला' के रूप में शान्त होने लगती है।''[48] माधवी को हर मित्र में 'पति' ढूँढना तथा उसके हर मित्र का माधवी को महज एक 'जिस्म' मानना स्वाभाविक है।

'नावें' की मालती भी पुरुष मित्र बनाकर अकेलेपन तथा एकरसता को समाप्त कर लेना चाहती है। आज आधुनिकता के कारण कई महिलाओं को पुरुष मित्र चाहिए क्योंकि वह उनके जीवन में घिर आई रिक्तता को भर सकता है – रिक्ति जो दैहिक भी है और मानसिक भी। किन्तु यह मैत्री भाव इन महिलाओं को संतोष या पूर्णता प्रदान नहीं करता, बल्कि उन्हें और भी अशान्त बनाता है। इसका कारण है – सामाजिक वर्जनाओं का भय, इस कारण लुक–छिप कर मिलना, स्वयं को अपराधी अनुभव करना या उस इच्छित पुरुष से विवाह न कर पाने की विवशता के कारण मानसिक रुग्णता का शिकार हो जाना। इस प्रकार समाज तथा समय से भयभीत होकर भी ये महिलाएँ सुख के क्षणों को भोगती अवश्य हैं, किन्तु हड़बडी में। इन्हें सबकुछ मिलने पर भी कुछ नहीं मिल पाता है। यहाँ उन्मुक्त यौन प्रवृत्ति के कारण एक और समस्या जन्म लेती है जो यौन–नैतिकता की समस्या से भी गंभीर है। यह है – इन सम्बंधों के परिणामस्वरूप जन्म लेनेवाली या जन्म से पूर्व मार दी जाने वाली अवैध संतान। महानगरों में उन्मुक्त यौन प्रवृत्ति अधिक देखने को मिलती है।

8. पुरुष की स्थिति, स्थानः

हमारे समाज में पुरुषों का स्थान हमेशा से ही सर्वोपरि रहा है। कुछ समय पूर्व तक पत्नी के लिए पति ही परमेश्वर या देवता के रूप में था। चाहे पुरुष कैसा ही क्रूर या अत्याचारी क्यों न हो, स्त्री उसे परमेश्वर मानकर उसकी उचित–अनुचित सभी प्रकार की आज्ञाओं का पालन करती थी। पुरुष पर पूरे परिवार की जिम्मेदारी रहती थी। पूरे परिवार का पालन–पोषण करता था किन्तु अब परिवार अधिनायकवादी आदर्शों की ओर बढ़ रहे है। अब पिता परिवार में निरंकुश शासक के रूप मे नहीं रहा है। परिवार से सम्बंधित

यह महत्वपूर्ण निर्णय अब केवल पिता के द्वारा ही नहीं लिये जाते। परिवार मानव–जीवन की आधारशिला है। सुबह घर से निकला हुआ व्यक्ति, दिन भर कार्यरत, क्लान्त शिथिल होकर संध्या समय जब घर लौटता है तो उसे अपने परिवार में ही सुख–शान्ति का आभास मिलता था। पारिवारिक व्यक्तियों के पारस्परिक माधुर्यपूर्ण व्यवहार पारिवारिक सम्बंधों को सुदृढ़ एवं सौहार्दपूर्ण बनाता है। हमारे देश में प्राचीन काल से चली आने वाली संयुक्त परिवार की परम्परा की सुदृढ़ नींव आज हिलती हुई दिखाई दे रही है। प्राचीन काल में परिवार का मुखिया अर्थोपार्जन करता था और परिवार के सारे सदस्य उसकी आय पर निर्भर रहते थे। किन्तु आज की परिस्थितियों में यह सम्भव नहीं है। पुरुष के सामाजिक सम्बंध उसकी प्रकृति, पद तथा व्यवहार से बनते या बिगड़ते हैं। चूँकि भारतीय समाज में महिला का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं माना जाता रहा है, अतः उसके सामाजिक सम्बंधों का आधार पुरुष अर्थात् पति को माना जाता रहा है। किन्तु आज स्थिति ने पलटा खाया है। शिक्षा ग्रहण करके महिला ने अपना अलग अस्तित्व बनाया है। अर्थोपार्जन करके स्वयं को पुरुष की कृपा से मुक्त किया है। पहले हर क्षेत्र में पुरुष का कार्य निश्चित होता था। किन्तु आज ऐसी कोई सीमा नहीं है। आज महिलाएँ पुरुषों के साथ हर कार्यक्षेत्र में कंधे से कंधा मिलाकर चलती हैं।

अधिकांश समय घर से बाहर बिताने के कारण पुरुष प्रायः अकेलेपन से अपेक्षाकृत कम दंशित होते हैं। घर के विकल्प के रूप में उनके पास मित्र–मंडल, कॉफी–हाऊस का अपरिचित किन्तु मनोरंजक माहौल, बिजली के प्रकाश में नहाई लम्बी–चौड़ी सड़कें, पार्क के कोने, सिनेमा हॉल के अहाते, आदि होते हैं। जिसमें बेझिझक जाकर पुरुष अपना दिल बहला सकते हैं किन्तु स्त्री नहीं।

निस्संदेह पुरुष प्रतिदिन बहुत से किलोमीटर की ऊब व थकान से भरी यात्रा करके अपने गन्तव्य तक पहुँचते हैं। फिर भी उनकी समस्या नौकरीपेशा महिलाओं जैसी विकट नहीं है। कारण है, स्त्री–पुरुष की भिन्न शारीरिक संरचना तथा परम्परागत श्रम–विभाजन जो उसे क्लान्ति के साथ मानसिक अशान्ति भी प्रदान करते हैं। अधिकांश परिवारों में पुरुष कामकाजी पत्नी के साथ मिलकर गृहकार्य में हाथ बँटाने लगे हैं। यह स्थिति परिवर्तन की सूचक है।

''कई जगहों पर अधीनस्थ महिला कर्मचारी को महज एक शरीर समझकर उसका मनमाने ढंग से उपयोग करना आज भी पुरुष अधिकारी अपना अधिकार समझता है। पदोन्नति का आश्वासन, भौतिक

सुविधाएँ, आर्थिक सहायता आदि अनेक प्रलोभन देकर वह महिला कर्मचारी का नैकट्य–लाभ प्राप्त करने में सफल भी हो जाता है। इस निकटता के मूल में चूँकि दैहिक आकर्षण होता है, अतः ऊब जाने पर वह किसी दूसरी महिला कर्मचारी पर दृष्टि गड़ाने में कोई बुराई नहीं समझता। स्पष्ट है कि अधिकारी में आज भी सामन्तवादी प्रवृत्ति विद्यमान है जो महिला को असुरक्षित एवं अपराध बोध से ग्रस्त करती है। प्रायः पुरुष अधीनस्थ महिला के साथ खिलवाड़ करने को लालायित रहता है। यदि वह मालिक है, तब उसकी स्थिति सावन के अंधे की तरह है। यदि वरिष्ठ अधिकारी है तो वह बहती गंगा में हाथ धोने और एकाध डुबकी लगाने में कोई बुराई नहीं समझता। कहने का अभिप्राय यह है कि उसकी दृष्टि स्त्री के मादा रूप पर केन्द्रित रहती है। वह उसे अपनी भाँति एक सामाजिक–आर्थिक प्राणी नहीं मानता।

सहकर्मी पुरुषों के साथ कामकाजी महिलाओं के सम्बंधों में देह का व्यापार प्रायः नहीं होता, देह की लालसा भले हो। कारण स्पष्ट है। सहकर्मी पुरुष के पास ऐसा कोई अधिकार अथवा प्रलोभन नहीं होता जिसके बल पर महिला के साथ मनमानी की जा सके। दूसरे, पुरुष सहकर्मी के माध्यम से महिला की भी स्वार्थ सिद्धि नहीं हो पाती। अतः साधन रुप में अपना तन देने में वह संकोच करती है। सहकर्मियों के साथ उनके सम्बंध समानता, मित्रता, शत्रुता सभी तरह के होते हैं।

निस्संदेह भारतीय पुरुष आज भी पुरुष तथा पति होने के नाते परम्परा से मिले दर्प भाव को पूरी तरह त्याग नहीं पाया है, किन्तु काफी सीमा तक इससे ऊबर अवश्य चूका है। यही कारण है कि उसने नारी को अपना साथी एवं प्रतिद्वन्द्वी स्वीकार कर लिया है, किन्तु फिर भी वह नारी को अपने से श्रेष्ठ पद अथवा स्थिति में नहीं देखना चाहता। क्योंकि पत्नी की सामाजिक एवं आर्थिक श्रेष्ठता उसके अहम् पर चोट करती है।''[49]

* * * * *

संदर्भिका

1 भारत में विवाह और कामकाजी महिलाएं : प्रोमिला कपूर, पृ. 9

2. हिन्दी उपन्यासों में कामकाजी महिला : डॉ. रोहिणी अग्रवाल, पृ. 55

3. हिन्दी उपन्यासों में कामकाजी महिला : डॉ रोहिणी अग्रवाल, पृ. 56

4 पचपन खम्भे लाल दीवारे : उषा प्रियंवदा, पृ. 11

5 पचपन खम्भे लाल दीवारें : उषा प्रियंवदा, पृ. 49

6. छाया मत छुना मन : हिमांशु जोशी, पृ. 49

7. नगरपुत्र हॅसता है : धर्मेन्द्र गुप्त, पृ. 30

8. दो लडकियाँ : रजनी पनिकर, पृ 4

9 दो लडकियाँ : रजनी पनिकर, पृ. 90

10. बँटता हुआ आदमी : निरुपमा सेवती, पृ 101

11. बॅटता हुआ आदमी : निरुपमा सेवती, पृ. 104

12 बँटता हुआ आदमी : निरुपमा सेवती, पृ. 103

13. बँटता हुआ आदमी : निरुपमा सेवती, पृ. 142

14. बँटता हुआ आदमी : निरुपमा सेवती, पृ. 32

15. नावे : शशिप्रभा शास्त्री, पृ. 27

16 नावे : शशिप्रभा शास्त्री, पृ. 8

17. नावें : शशिप्रभा शास्त्री, पृ. 14

18. नावें : शशिप्रभा शास्त्री, पृ 31

19. पतझड की आवाजें : निरुपमा सेवती, पृ. 136

20. बेघर : ममता कालिया, पृ. 48

21 अपने पराए : शशिभूषण सिंहल, पृ. 178

22 दो लड़कियाँ : रजनी पनिकर, पृ. 31

23. दो लडकियाँ : रजनी पनिकर, पृ. 8

24. नावें : शशिप्रभा शास्त्री, पृ. 15

25. नावें : शशिप्रभा शास्त्री, पृ. 27

26. पतझड़ की आवाजें : निरुपमा सेवती, पृ. 141

27. क्रिमिनल लॉ जर्नल, बम्बई, पृ 1399

28. आपका बण्टी : मन्नू भण्डारी, पृ 40

29. नरक दर नरक : ममता कालिया, पृ. 192

30. नरक दर नरक : ममता कालिया, पृ. 188

31 नावें : शशिप्रभा शास्त्री, पृ. 132

32. नावें : शशिप्रभा शास्त्री, पृ. 78–79

33. नावें : शशिप्रभा शास्त्री, पृ. 100

34. भारत में विवाह और कामकाजी महिलाएँ : प्रोमिला कपूर, पृ 11

35 उसके हिस्से की धूप : मृदुला गर्ग, पृ 61

36. उसके हिस्से की धूप : मृदुला गर्ग, पृ. 115
37 अपने पराए : शशिभूषण सिंहल, पृ. 146
38 अपने पराए : शशिभूषण सिंहल, पृ 170
39. अपने पराए : शशिभूषण सिंहल, पृ. 171
40. आपका बण्टी : मन्नू भण्डारी, पृ. 44
41. उस तक : कुसुम अंसल, पृ 40
42. उस तक : कुसुम अंसल, पृ. 41
43. दो लडकियॉ : रजनी पनिकर, पृ. 90
44 पतझड की आवाजें : निरुपमा सेवती, पृ 128
45 पतझड की आवाजे : निरुपमा सेवती, पृ. 95
46. दो लड़कियॉ : रजनी पनिकर, पृ. 31
47. दो लडकियाँ : रजनी पनिकर, पृ 8
48. नगरपुत्र हँसता है : धर्मेन्द्र गुप्त, पृ. 131
49. हिन्दी उपन्यास में कामकाजी महिला : रोहिणी अग्रवाल

* * * * *